# कुरुक्षेत्र

जुलाई 1988 मूल्य दो रुपये

ग्रामीण जल सप्लाई क्षेत्र के अन्तर्गत सर्वोच्च प्राथमिकता उन गांवों को दी जाती है जहां पीने के पानी की भारी समस्या है। यह विशाल कार्यक्रम धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से पर्वतीय, मरूस्थली तथा आदिवासी क्षेत्रों में दूर-दराज़ के स्थानों तक पहुंच रहा है।

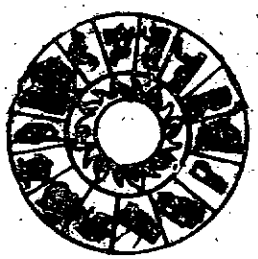

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

•

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

•

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1,100.1 से कीजिये।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार: सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

**दूरभाष: 384888**
**एक प्रति: 2.00 रु.**
**वार्षिक चन्दा: 20 रु.**

सहायक सम्पादक: गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक: राकेश शर्मा

---

सहायक निदेशक: राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ: राजेन्द्र कुमार टंडन

चित्र: फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हों।

# कुरुक्षेत्र

## ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

वर्ष 33 आषाढ़-श्रावण 1910 अंक-9

इस अंक में — पृष्ठ संख्या

**जल समस्या का हल सामूहिक प्रयास** 2
सरला गोपालन

**ग्रामीण जल सप्लाई-नई दिशाओं की ओर** 6
गौरीशंकर घोष

**ग्रामीण क्षेत्रों में जल सप्लाई** 8
एम.एम. दत्ता

**ग्रामीण जल आपूर्ति और ग्रामीण निर्धन योजना अवधि में उपलब्धियां** 12
निर्मल गांगुली

**ग्रामीण विकास के चालीस वर्ष एक विश्लेषण** 16
डॉ. कृष्ण मुरारी

**भारतीय जल संसाधनों की प्रबन्ध व्यवस्था भू-प्रबन्धों को अधिक महत्व** 19
बी.बी. वोहरा

**भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमि सुधार आंदोलन** 25
रजनी शर्मा, डॉ. मन्सूर अली

**राजस्थान में डेयरी उद्योग: एक मूल्यांकन** 27
डॉ. जवाना राम

**सेंकड़ी गांव में जलोत्थान सिंचाई योजना** 31
अशोक कुमार यादव

**पानी की समस्या: समाधान और प्रयास** 34
अरविन्द घोष

**सार्वजनिक कोष कार्यक्रम– नगालैंड के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन अभियान** 36
अ.मा. गोखले

**कोटा जिला राजस्थान ग्रामीण विकास को नई दिशा दी बीस सूत्री कार्यक्रम ने** 39
प्रभात कुमार सिंघल

**देखो और सीखो (कविता)** 41
डि.सि. केशवराव

**ग्रामीण अंचलों में शुद्ध पेयजल की समस्या** 42
डॉ. विनोद गुप्ता

**जयपुर जिले में कृषि श्रमिकों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा** 43
डॉ. आर. एम. यादव

# जल समस्या का हल-सामूहिक प्रयास

सरला गोपालन
संयुक्त सचिव
ग्रामीण विकास विभाग

हमारे देश में एक ओर कुछ क्षेत्र ऐसे हैं, जहां नहरें, नदियां, झरने, झीलें आदि पानी के कोई न कोई स्रोत उस क्षेत्र के लिये प्रकृति का वरदान है। दूसरी ओर वे शुष्क व अर्धशुष्क, रेगिस्तानी, पर्वतीय, तटवर्ती व चट्टानी क्षेत्र हैं जहां पानी के लिये लोग तरस जाते हैं। वहां पानी एक अमूल्य वस्तु है। ऐसे क्षेत्रों में अन्य कामों के लिये तो क्या, पीने के लिये पानी भी कठिनाई से उपलब्ध हो पाता है।

इन क्षेत्रों में घर के कामकाज के अतिरिक्त घर की आवश्यकताओं के लिये पानी लाने का काम भी स्त्रियों के जिम्मे होता है। सुबह-शाम स्त्रियों की टोलियां दूर-दराज के जल स्रोतों से पानी लेने निकल पड़ती हैं। शहरों में यद्यपि पानी सप्लाई की व्यवस्था मौजूद है लेकिन गंदी बस्तियों तथा झुग्गी-झोपड़ी वाले इलाकों में पानी व जल-मल निकासी की सुविधायें पर्याप्त नहीं हैं।

प्रायः बस्तियों में आधारभूत सुविधाओं की योजना की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इस कारण इन इलाकों में गंदगी व अस्वच्छता व्याप्त हो गयी। अंतर्राष्ट्रीय जल सप्लाई व सफाई दशक के दौरान इन दोनों बातों के महत्व तथा लोगों का जीवन स्तर सुधारने के लिये ये सुविधायें जुटाने की तरफ सरकारों, स्थानीय संस्थाओं व समुदायों का ध्यान दिलाया गया।

इन सुविधाओं के अभाव का महिलाओं पर दो तरफा प्रभाव पड़ा है। एक तो इससे इनका जीवन स्तर, पूरे परिवार का स्वास्थ्य प्रभावित हुआ है, मृत्यु दर अधिक रही है, विशेषकर आंत्रशोध, हैजा और पानी से होने वाली अन्य बीमारियों के कारण शिशु मृत्यु दर अधिक रही हैं। दूसरी ओर इन सुविधाओं के न होने से स्त्रियों तथा लड़कियों का अधिकांश समय दूर से पानी लाने और उसे संचय करके रखने में ही लग जाता है। इस काम में काफी समय बर्बाद होने और परिणामस्वरूप शारीरिक थकावट के कारण अधिकांशतः वे शिक्षा, किसी काम काज को सीखने और कोई काम धंधा कर पाने की सुविधा से वंचित रह जाती हैं। विशेष कर गरीब वर्ग की स्त्रियां इस प्रकार छोटे-मोटे काम करने को विवश हो जाती हैं और आर्थिक विपन्नता के दुष्चक्र में फंसी रहती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय जल सप्लाई व सफाई दशक में जल व सफाई को न्यूनतम आवश्यकता मानकर इन सुविधाओं को निश्चित समय-अवधि के भीतर वैज्ञानिक विधि से जुटाने पर बल दिया गया है। भारत में वर्ष 1986 में पीने के पानी की सप्लाई तथा सम्बद्ध जल प्रबंध के बारे में एक टेक्नोलॉजी मिशन गठित किया गया है। अब महिलाओं की समस्याओं पर ध्यान दिया जा रहा है तथा उन्हें थका देने वाले कामों से छुटकारा दिलाने व जल स्रोतों का पता लगाने, जल निकासी संयंत्रों की देखरेख तथा शारीरिक सफाई व ठीक से जीवन यापन के बारे में शिक्षा देने के काम में सम्मिलित किया जा रहा है।

**जल समस्या के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण**

जल का मुख्य स्रोत है वर्षा। मानसून के दौरान पानी प्राकृतिक तथा मानव निर्मित झीलों, तालाबों में इकट्ठा किया जाता है। यहां से पानी नहरों, नालियों के जरिये खेतों में सिंचाई के लिये और कभी-कभी जल-शोधन संयंत्रों में सफाई करके पीने योग्य बनाकर सप्लाई के लिये भेजा जाता है। नदियां, झरने, कुयें, ताल-तलैया पानी के अन्य साधन हैं। कुछ स्थानों पर नलकूप, बिजली के कुयें या डीजल पम्प सेट भी पानी खींचते हैं। भारत में बड़ी संख्या में गांव ऐसे क्षेत्रों में हैं जहां पानी का कोई स्रोत नहीं है और जहां इन स्रोतों तक पहुंच पाना आसान नहीं है। पानी की समस्या वाले गांव वे हैं जहां 1.6 किलोमीटर आसपास के क्षेत्र में 15 मीटर से अधिक गहराई में पानी नहीं है या फिर पर्वतीय क्षेत्रों में पानी 100 मीटर से नीचे है या फिर वे गांव हैं जहां का पानी दूषित है।

शहरी क्षेत्र में साफ जल उपलब्ध रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में पानी सामान्यतः नदियों, नहरों, झीलों और कुओं से

लिया जाता है और इसे शायद ही साफ किया जाता है। इसकी सफाई यही होती है कि इसमें पड़ी कोई चीज दिखाई देने पर निकाल दी जाती है। यह मान्यता प्रचलित है कि नदी और झरनों का पानी चूंकि छिद्रों वाली चट्टानों और रेत से गुजरता है इसलिये स्वतः ही साफ हो जाता है। जल स्रोत की गंदी जगह, औद्योगिक कचरा, गंदा पानी, नदी को गंदे पानी की निकासी के लिये इस्तेमाल करना, नदियों, कुओं, तालाबों में मानवों और पशुओं का नहाना, सफाई के बारे में आम उदासीनता तथा अज्ञानता इन कारणों से भी पीने के साफ पानी की समस्या बनती है।

वर्ष 1990 तक सभी गांवों में पीने का साफ पानी पहुंचाने के उपाय किये जा रहे हैं और ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम के अंतर्गत आधी से अधिक ग्रामीण आबादी तक पीने का पानी पहुंचाया जा चुका है। सातवीं पंचवर्षीय योजना के आरंभ में पानी की समस्या वाले गांवों की संख्या 1,61,722 थी। योजना के प्रथम दो वर्षों में इनमें से 62,976 गांवों में पूरी तरह और 30,622 गांवों में आंशिक रूप से पानी पहुंचाया जा चुका था। वर्ष 1987-88 के दौरान 50,570 समस्याग्रस्त गांवों में (36,738 में पूरी तरह और 14,032 में आंशिक रूप से) पानी पहुंचाने का लक्ष्य था और जनवरी, 1988 तक 35,731 गांवों में पानी पहुंच चुका था। इस काम पर नौ अरब रुपये के वार्षिक खर्च की व्यवस्था की गयी है।

वर्ष 1988-89 और 1989-90 के दौरान पानी की समस्या वाले गांवों के लिये एक विस्तृत कार्य योजना बनायी गयी है। इस योजना के आरंभ में ऐसे गांवों की संख्या 1 लाख 61 हजार थी। वर्ष 1988-89 में इनमें से 32,698 गांवों में पानी मिलने लगेगा और 1989-90 में 25,836 गांवों में पानी आ जायेगा। इनके अतिरिक्त 1988-89 में 18,500 अन्य गांवों में तथा 1989-90 में 18,238 गांवों में पूरी तरह या आंशिक रूप से पानी पहुंचाने का काम शुरू किया जायेगा। इस प्रकार आठवीं योजना में केवल 3474 गांव ही ऐसे रह जायेंगे जहां पानी पहुंचाना बाकी रह जायेगा। ये गांव कठिन इलाकों में हैं इसलिये वहां पानी सप्लाई के काम में कई समस्यायें हैं। वैसे इन तक पानी पहुंचाने का काम सातवीं योजना में ही कर देने की कोशिश की जाएगी।

पीने के पानी की समस्या दूर करने की नयी नीति के अंतर्गत त्वरित ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम (ए.आर. डब्ल्यू. एस.पी.) और न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (एम. एन.पी.) के अधीन गांवों में पानी की आपूर्ति का कार्यक्रम निम्न प्रकार से किया जाना है:

1. छठी योजना में समस्याग्रस्त गांवों की 1980 की सूची में से बचे गांवों में आपूर्ति।
2. 1985 की सूची के अनुसार बिना पानी वाले सभी गांवों में आपूर्ति।
3. बाकी बचे जिन समस्याग्रस्त गांवों में पानी का कोई स्रोत नहीं है, उन्हें आपूर्ति।
4. दूषित पानी (रासायनिक प्रदूषण व कीड़े वाला) वाले गांवों में आपूर्ति।
5. प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 10 लीटर से कम सप्लाई वाले सभी गांवों में आपूर्ति।
6. प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 40 लीटर से कम सप्लाई वाले सभी गांवों में आपूर्ति।

**राष्ट्रीय जल नीति**

सितम्बर, 1987 में घोषित राष्ट्रीय जल नीति में इस बात पर बल दिया गया है कि पानी का उपयोग अत्यंत किफायत से किया जाये और इसे बचाकर रखने के महत्व के बारे में जन चेतना जगाई जाये। पानी एक दुर्लभ स्रोत है और सिंचाई, विद्युत उत्पादन तथा जीव अस्तित्व के लिये खर्च होता रहता है। अतः विज्ञान और टेक्नोलॉजी तथा प्रशिक्षण के जरिये जल की गुणवत्ता बढ़ाने को प्राथमिकता दी जानी है। नयी जल नीति में जल संसाधनों की किफायत और प्रबंध, जल उपलब्धता के बारे में जानकारी प्रणाली का विकास, जल स्रोतों का नियोजित विकास, जल को फिर साफ करके दुबारा उपयोग लायक बनाने पर भी बल दिया गया है।

इस नीति में यह भी कहा गया है कि "जल स्रोतों का विकास परियोजनाओं का आयोजन व विकास जहां तक संभव हो, बहु-उद्देशीय परियोजनाओं के रूप में किया जाये। पीने के पानी की सप्लाई को प्राथमिकता दी जाये। जहां कहीं संभव हो जल परियोजना से सिंचाई, बाढ़ की रोकथाम, पन बिजली उत्पादन, नौवहन, मछली पालन की व्यवस्था के उपाय किये जायें।" नीति में "जलग्रहण शोधन व प्रबंध जैसे पर्यावरणीय तथा वातावरणीय पहलुओं, प्रभावित लोगों के पुनर्वास व कमांड क्षेत्र विकास सहित

परियोजनाओ के नियोजन, निर्माण, स्वीकृति व कार्यान्वयन के बारे में समन्वित तथा बहु विभागीय दृष्टिकोण" अपनाने पर भी बल दिया गया है।

"आदिवासी क्षेत्रों या अनुसूचित जातियों व जनजातियों जैसे विशेष रूप से सुविधाहीन वर्गों वाले क्षेत्रों के लाभ के लिये परियोजनाओं को तैयार किया जाये। अन्य क्षेत्रों में भी परियोजना नियोजक के समय अनुसूचित जातियों व जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान दिया जाये।"

"सारी शहरी और ग्रामीण आबादी के लिये 1991 तक पीने के पानी की पर्याप्त व्यवस्था कर दी जाए। जहां कहीं पीने के पानी का कोई स्रोत नहीं है वहां के लिए इसकी व्यवस्था क्षेत्र की सिंचाई व बहुउद्देशीय परियोजनाओं में अनिवार्य रूप से शामिल की जाये। कहीं भी उपलब्ध पानी को मानव व पशुओं के पीने के पानी की आवश्यकता पूरी करने में सबसे पहले इस्तेमाल किया जाये।"

राष्ट्रीय जल नीति में जिन अन्य पहलुओं पर बल दिया गया है वे हैं—सृजित संसाधनों की देखभाल व आधुनिकीकरण, भूमिजल विकास, जल आबंटन प्राथमिकतायें, अधिक से अधिक परिवारों को लाभ पहुंचाने वाली सिंचाई परियोजनायें ताकि उत्पादन अधिकतम हो सके, जल उपयोग व भूमि उपयोग नीतियों में समन्वय, जल संसाधन की दुर्लभता का आभास कराने के लिये जल दरें, जल क्षेत्रीयकरण, बाढ़ नियंत्रण प्रबंध, जल प्रबंध में किसानों और स्वयंसेवी एजेंसियों का सहयोग तथा सूखा प्रबंध आदि।

राष्ट्रीय जल नीति में कहा गया है कि "जीवों के लिये जल की अनिवार्यता, पर्यावरण संतुलन व हर प्रकार की आर्थिक तथा विकास गतिविधियों में इसके महत्व तथा इसकी दुर्लभता को ध्यान में रखते हुये इसका नियोजन व प्रबंध और किफायती तथा संतुलित इस्तेमाल बहुत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय जल नीति की सफलता इसके सिद्धांतों व उद्देश्यों के लिए प्रतिबद्धता और राष्ट्रीय सहमति पर निर्भर है।"

**गांवों में पीने के पानी तथा सम्बद्ध जल प्रबंध के लिये टेक्नोलॉजी मिशन**

यह मिशन 1986 में ग्रामीण विकास विभाग के अंतर्गत स्थापित किये गये पांच मिशनों में से है और इसका उद्देश्य देश में पीने के साफ पानी की समस्या को वैज्ञानिक तरीके से हल करना है। यह मिशन प्राथमिकता के आधार पर राष्ट्रीय विज्ञान संस्थानों, जल सप्लाई प्राधिकरणों, विभिन्न विशेषज्ञों तथा सरकारी विभागों के संसाधनों को जुटायेगा और निचले स्तर पर समस्याओं का अध्ययन करके लागत कम करने के उपायों का मूल्यांकन करेगा जिससे लोगों को पीने का ठीक और पर्याप्त मात्रा में पानी लगातार मिल सके।

टेक्नोलॉजी मिशन के अधीन पांच उप-मिशन इन बातों पर ध्यान देंगे:—

1. वैज्ञानिक स्रोत की जानकारी लेना, जल की किस्म व मात्रा की जांच, जल की खपत व भूजल एक्विफरों की पुनः सक्रियता का आकलन।
2. पानी के कीड़ों की रोकथाम।
3. फ्लूरॉसिस नियंत्रण।
4. खारेपन पर नियंत्रण तथा
5. आवश्यकता से अधिक लौह मात्रा हटाना। कम लागत वाले वैज्ञानिक व टेक्नोलॉजिकल तरीके निकालने के लिये पचपन लघु मिशन परियोजनायें कायम की गयी हैं।

यह महसूस किया गया है कि "जल एक दुर्लभ तथा निर्धारित स्थल संसाधन है और हम इसे बड़ी मात्रा में नष्ट नहीं कर सकते। हम इसे केवल खराब कर सकते हैं। फिर भी यह स्वतः साफ होता रहेगा।" (डॉ. एस.एस. कालबाग) डॉ. कालबाग का कहना है कि जल फिर बन जाने वाला संसाधन है और इसके बारे में मुख्य संकट स्थान और समय के अनुसार इसके वितरण का है जबकि तेल संकट की स्थिति इससे भिन्न है। इसलिये टेक्नोलॉजीकल स्रोत का पता लगाने, जल प्रबंध व इसकी किस्म में सुधार पर बल दिया है।

**जल प्रबंध विधियां**

जल संसाधन के बारे में प्रबंध विधियां निम्नलिखित हैं:—

1. स्रोत जानकारी दूर संवेदन (उपग्रह चित्र), भू-भौतिकीय अन्वेषण व भूजलीय अध्ययनों में समन्वय रखकर जल उपलब्धता के अधिक विश्वसनीय आंकड़े प्राप्त किये जाते हैं। इससे पानी के बारे में खुदाई कार्य में 95% सफलता

पक्की हुई है। जहां कहीं उपयोगी हो ग्रामवासियों के अनुमान पर भी ध्यान दिया जाता है।

2 स्रोत विकास– जांच के लिये बोर होल लागर और फिर परीक्षण खुदाई की जाती है। कुओं की खुदाई के लिये अधिक से अधिक बरमें दिये जाते हैं। नलकूपों, गहरे और कम गहरे कुओं पर हैंडपंपों की स्थापना की जानकारी का रिकार्ड रखा जाता है जहां अन्य विद्युत साधन उपलब्ध न हों वहां पंपिंग के लिए सौर सैलों और पानी उठाने के लिये पवन चक्कियों का उपयोग किया जाता है।

3. जल प्रबंध– सतही और भूजल के संयुक्त उपयोग पर्यावरण प्रबंध के लिये समन्वित जल प्रबंध नीति निर्धारण और समुचित फसल नीति का विकास और वैज्ञानिक सिंचाई विधियों को प्रोत्साहन। जल बजट और जल प्रबंध में कंप्यूटर का उपयोग भूजल की मात्रा बढ़ाने और जल संरक्षण उपाय जैसे एक्विफर परीक्षण, रीचार्जिंग अनुमानों का माडल और दर, जल के अन्य साधनों का पता लगाना जैसे कम गहराई पर पानी, बांधों के जरिये पानी के रिसाव को रोकना, पानी भंडारण के लिये फेरोसीमेंट टेक्नोलॉजी का उपयोग, परंपरागत जल संरक्षण व वर्षा जल बुआई प्रणाली में सुधार, जल ग्रहण स्थल की मरम्मत, भूमि की नमी बनाये रखना। भूजल की लगातार जानकारी का भी सुझाव दिया गया है।

4. जल की किस्म का आकलन– देश भर में पानी की किस्म पर नजर रखने को सबसे अधिक महत्व दिया गया है। स्थिर और चलती-फिरती जल परीक्षण प्रयोगशालायें स्थापित करने और प्रशिक्षण देने के उपाय किये जा रहे हैं। स्थल पर ही जांच के लिए बैटरी चालित जल परीक्षण किट तैयार की गई है।

5. पेट के कीड़ों की रोकथाम– सभी समस्याग्रस्त गांवो में 1998 तक पेट के कीड़ों की समस्या दूर कर देने का लक्ष्य है। पानी के वैकल्पिक स्रोत भी ढूंढ़े जा रहे हैं और कुओं में सुधार के उपाय किये जा रहे हैं। पेट में कीड़े मारने की दवाई और मरीजों के इलाज के उपाय भी जारी हैं।

6. अतिरिक्त फ्लोराइड– जल में फ्लोराइड की मात्रा 0.5 से 1.5 पी.पी. एम. के बीच होनी चाहिये। इसें घर में ही और जल स्रोत पर ठीक करने की तकनीक तैयार की गयी है।

7. अतिरिक्त लौह– एक लीटर पानी में लौह अंश 0.3 मि.ग्रा. होना चाहिये। इसके बारे में भी विधि किट तैयार कर ली गई है।

8. पानी में कीड़ों से दूषण– पानी में कृमि की समस्या दूर करने के लिये क्लोरीन का उपयोग, कूड़ा कचरा, गंदगी पानी से दूर रखने की जानकारी दी जा रही है।

9. खारा/नमकीन– इन्हें दूर करने के उपाय मौजूद हैं। पानी का दूसरा स्रोत खोजने को प्राथमिकता दी जाती है।

**जल के लिये टेक्नोलॉजी मिशन**

इसके लिये सभी वैज्ञानिक संगठनों के बीच समन्वय पर मुख्य बल दिया जाता है। यह समन्वय वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद क़ायम करती है। विभिन्न एजेंसियों और संगठनों को समयबद्ध कार्य सौंपा जाता है।

**अनुसंधान व विकास**

अनुसंधान और विकास लगातार जारी रखने पर जोर दिया जाता है। पानी के बारे में अभी तेरह से अधिक अनुसंधान परियोजनाओं को कार्यान्वित किया जा रहा है।

**जन सहयोग**

पीने के पानी के प्रबंध कार्य में सबसे महत्वपूर्ण पहलू है जन सहयोग। टेक्नोलॉजी मिशन का दृष्टिकोण यह है कि टेक्नोलॉजी की लोगों को खास कर स्त्रियों को सरल तरीके से जानकारी दी जाये। इसके लिये शिविरों, दृश्य-श्रव्य माध्यमों, लोक कलाओं, प्रदर्शन कार्यक्रमों आदि का आयोजन किया जाता है।प्रशिक्षण कार्यक्रम भी आयोजित किये जाते हैं।

स्थानीय लोगों के अनुभव तथा जानकारी का जल स्रोतों का पता लगाने में उपयोग किया जाता है। जल संसाधनों की बेहतर देखभाल की तकनीकों की जानकारी दी जाती है। हमारे देश में हर वर्ष पीने के पानी की सप्लाई और सफाई कार्यों पर लगभग दस अरब रुपये खर्च किये जाते हैं। इसलिये इस महत्वपूर्ण कार्य व विशाल खर्च में लोगों को भागीदार बनाना नितांत आवश्यक है ताकि इन बुनियादी सुविधाओं का उपयोग बेहतर व अधिक प्रभावकारी तरीके से हो सके। यह सफलता वैज्ञानिक तरीके से प्रबंध और लोगों की सक्रिय भागीदारी के कारण संभव हुई।

**अनुवाद: विनोद बाली**

# ग्रामीण जल सप्लाई – नई दिशाओं की ओर

गौरीशंकर घोष

जब हम पूरी पृथ्वी के कुल जल की बात करते हैं, तो यह बात सही है कि जल-चक्र में शामिल जल की मात्रा सदैव एक समान रहती है। वातावरण में पानी की जो मात्रा वास्तव में उपलब्ध है और जो जल-चक्र में बार-बार आती है, वह विश्व में उपलब्ध कुल जल संसाधनों के एक हजारवें भाग से कुछ ही ज्यादा अनुमानित की गई है। वातावरण में निहित जल की मात्रा भी काफी कम है और यह अनुमान लगाया गया है कि यह समस्त वातावरण के कुल आकार के एक प्रतिशत से भी कम है।

विश्व में प्रत्येक 100 मिलीमीटर वर्षा में से आमतौर पर लगभग 11 से 12 प्रतिशत पानी स्थायी सप्लाई के लिए मिल पाता है। सदियों से मानव विभिन्न प्रयोगों हेतु इस 11 प्रतिशत वर्षा के पानी को प्राप्त करने और इसे इकट्ठा करने के लिए कुएं, नहरें खोदकर, बोरिंग करके, पम्प लगाकर और तकनीकी प्रसार करके अनेक तरीके अपनाए गए हैं। जल प्रबन्ध प्रणाली का अधिकतम उपयोग उपलब्ध कुल जल के संतुलन का अध्ययन करके प्राप्त किया जा सकता है जहां सप्लाई के अनुसार मांग नियंत्रित अथवा संतुलित है।

इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि विश्व के उप-ऊष्ण कटिबंधीय और ऊष्ण कटिबंधीय भागों जैसे कि भारत में विशेष प्रकार की मौसम परिस्थितियों में 11 प्रतिशत की औसत वर्षा को अत्यधिक सूखे और अत्यधिक बाढ़ दोनों स्थितियों में जल प्रबन्ध करना एक कठिन काम है क्योंकि हमारे यहां मौसमी वर्षा होती है जिसे पूरे वर्ष में विभाजित नहीं किया जा सकता। भारत के एक बड़े हिस्से में गर्मी के मौसम के बाद लगभग 3 महीने मानसून का प्रभाव रहता है और उसमें भी अलग-अलग स्थानों पर 20 दिन से लेकर 60 दिन तक वर्षा होती है जिसके दौरान पूरे मौसम का पानी गिरता है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी पर दबाब होने के कारण चार-पांच बार भारी वर्षा होती है।

जलवायु परिस्थिति ने राजस्थान के मरुस्थलों, कच्छ और मध्य प्रदेश के कुछ भागों, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, कर्नाटक के कुछ भागों और तमिलनाडु में काफी कम दबाव वाले क्षेत्र विकसित हुए हैं। वास्तव में कुछ मानवीय कारणों जैसे बड़े पैमाने पर वन काटने, अधिक भूमि पर खेती करने, सीमान्त भूमियों को अधिक तादाद में चरागाह बनाने, ग्रामीण औद्योगिकीकरण, कृषि औद्योगिक प्रदूषण आदि की वजह से दबाव वाली पारिस्थितिक प्रणाली अस्त-व्यस्त हुई है। इस विकृति के लिए ऐसे क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि और भूमि, जल तथा ऊर्जा की बढ़ती हुई मांग भी उत्तरदायी है।

यह स्पष्ट है कि गैर-मौसम की वर्षा और उच्च वाष्पीकरण से भारत में जल प्रबन्ध बड़े सतही जलाशय की परियोजनाओं की बजाय मुख्य रूप से भूजल प्रबन्ध और वर्षा के पानी के एकत्रीकरण पर केन्द्रित रहेगा। पिछले दशक में भारत में भूजल का विकास प्रतीयमान रहा है। जबकि देश की कुल औसत जनसंख्या विकासात्मक स्तर का 25.1 प्रतिशत है, निवल प्रारूप 10.50 मिलियन हैक्टेयर मीटर है। इससे पीने के पानी और सूखे को कम किया जा सका है लेकिन इस मूल्यवान प्राकृतिक साधन के अनियंत्रित और गैर-वैज्ञानिक ढंग से विकास के कारण देश के कई सूखे से प्रभावित क्षेत्रों में गम्भीर स्थिति उत्पन्न हुई है। भूजल को प्रायः दोहराये जाने वाले प्राकृतिक संसाधन के रूप में माना जाता है। लेकिन यदि इसकी मांग और दुरुपयोग सप्लाई से कम है तो इसका पुनः प्रयोग नहीं हो सकता। गुजरात में महसाना इसका जीता-जागता उदाहरण है, जहां जल-स्रोत का शोषण 170 प्रतिशत से अधिक है और जहां जल-स्रोत 15 वर्षों में सूख जायेंगे। जल की अत्यधिक निकासी को कम करने के लिए कृषि जल सम्पूर्ति और उस क्षेत्र में जल दुरुपयोग में कमी सहित अनेक सम्भव उपायों पर विचार किया जा सकता है। तथापि डॉ. रस्टन (बिरमिंघम) और श्री तिवारी (केन्द्रीय भूजल बोर्ड) द्वारा विकसित किए गए माडल द्वारा यह प्रकट हुआ है कि यह अधिक शोषित क्षेत्रों में भूजल स्रोत में प्रमुख कमी को नहीं रोकेगा।

शोषण प्रौद्योगिकियों के विकसित होने और जल निकासी अथवा ड्रिलिंग पर कोई नियंत्रण न होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में जल का भारी शोषण हो रहा है। इससे ऐसे क्षेत्रों में आर्थिक स्तरण हुआ है क्योंकि धनी किसान गहरे स्रोतों तक पहुंच सकते हैं और उनका शोषण कर सकते हैं जबकि छोटे तथा सीमान्त किसान पानी का शोषण नहीं कर सकते क्योंकि वे जल स्तर के नीचे होने के कारण सतही ट्यूबवैलों अथवा खोदे गए कुओं का पहले ही इस्तेमाल कर रहे हैं।

सूखे के दौरान और साथ ही इसके तत्काल बाद भूजल का शोषण इतना बढ़ जाता है कि सूखे के बाद अच्छे मानसून के कारण अतिरिक्त जल सम्पूर्ति भविष्य के लिए जल स्रोतों की पर्याप्त सम्पूर्ति में सहायक नहीं होती। शोषण को स्थानीय प्रशासन द्वारा भी प्रोत्साहित किया जाता है। हाल के सूखे में तकनीकी सलाह के विरुद्ध महसाना में लगभग 800 ट्यूबवैल लगाए गए जिससे स्थिति और विकट हो गई है।

उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि जल स्रोतों की समस्या अस्थायी इंजीनियरी पर आधारित शोषणात्मक समाधानों से हल नहीं की जा सकती बल्कि इसे समन्वित मध्यावधि और दीर्घावधि योजनाओं के द्वारा हल किया जा सकता है जिनका जल-चक्र के अवरोध को रोकने के लिए सभी विभागों के संयुक्त प्रयासों से विकास करना होगा। शहरी तथा ग्रामीण विकास, वित्तीय/आर्थिक नीति आदि के क्षेत्र में विभिन्न नीतियों को पुनः परिभाषित करना होगा और सामाजिक-आर्थिक योजना प्रक्रिया में बड़े पैमाने पर नए कदम उठाने होंगे। जबकि एक ओर सतही जल के बेकार बह जाने को कम करके और रिसाव और परिभ्रमण में वृद्धि करके मौसमी वर्षा के पानी का अधिकतम उपयोग करने के लिए सभी प्रयास किए जाने हैं, दूसरी ओर उन क्षेत्रों में पानी मांग को कम करने के लिए सभी कदम उठाये जाने चाहिए अब हमने कृषि तथा उद्योगों के लिए योजनाओं में पानी की उपलब्धता के लिए निर्धारित सीमा की ओर ध्यान दिया है। अन्तरिक्ष विभाग द्वारा हाल ही में किए गए एक अध्ययन ने उद्योग और कृषि के लिए बढ़ती हुई मांग के कारण 2000 ई. तक मांग और सप्लाई के बीच बढ़ते हुए अन्तर को दर्शाया है। मानव जाति और पशुओं के लिए पीने के पानी की कुल मांग भूजल के 4-6 प्रतिशत और सतही जल के 10 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी।

ग्रामीण जल सप्लाई को अभी तक पता लगाई गई जल सप्लाई प्रणाली के विकास के रूप में महत्व दिया गया था। अब इस विषय पर विभिन्न माध्यमों की मार्फत एक परिवर्तन लाना है जिनमें भू-शास्त्रियों, भूजल शास्त्रियों, जन स्वास्थ्य इंजीनियरों, निर्माण इंजीनियरों, पर्यावरण शास्त्रियों, सिंचाई इंजीनियरों, कृषि वैज्ञानिकों और इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रियों को शामिल करना होगा। यह सिद्ध करना होगा कि ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम मात्र एक हार्डवेयर अभिमुख कार्यक्रम नहीं है। लोगों को शामिल करने के लिए एक विशाल सामाजिक जागरूकता अभियान शुरू करने और साथ ही पानी को एक सीमित साधन के रूप में उसके महत्व और स्वास्थ्य तथा अन्य उद्देश्यों के लिए स्वच्छ जल की आवश्यकता को समझाने पर बल दिया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय पेयजल मिशन, जोकि एक सामाजिक मिशन है, का उद्देश्य केवल विभिन्न स्रोतों से प्रौद्योगिकियां एकत्र करना नहीं है बल्कि इसका मुख्य ध्येय जनजागरूकता पैदा करना और लोगों को इस कार्य में भाग लेने के लिए प्रेरित करना है। यह स्वाभाविक है कि पीने के पानी की सप्लाई देने के बाद स्वास्थ्य और स्वच्छता के बारे में भी जागरूकता उत्पन्न करनी होगी। अन्य देशों और साथ ही भारत के विभिन्न परियोजना क्षेत्रों में प्राप्त हुए अनुभवों से पता चलता है कि लोगों के सहयोग और उन्हें आयोजना व कार्यान्वयन में शामिल करके शुरू की गई कोई भी जल सप्लाई योजना आसानी से जनता द्वारा स्वीकार कर ली जाती है और उसका बंदोबस्त आसानी से हो सकता है। जिन क्षेत्रों में दूषित पानी से होने वाली बीमारियों में कमी आई है, वहां लोगों के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव भी पड़ा है।

भूमि की तरह, धनी वर्ग पानी को भी धीरे-धीरे हथिया रहे हैं। पानी का वितरण दिन-प्रतिदिन असमान होता जा रहा है। पानी न मिलने का एक बड़ा कारण लोगों का गांवों से शहरों की ओर भागना भी है। यह छोटे तथा सीमान्त किसानों के लिए एक समस्या बन रही है कि वे अपने विकास और जीविका के लिए कृषि भूमि पर निर्भर रहें। यदि हम तत्काल कदम नहीं उठाते तो आने वाले समय में पानी का असमान वितरण हमारी अर्थव्यवस्था को पूरी तरह नष्ट कर सकता है। ये उपाय आज हमें कड़वे लग सकते हैं, परन्तु आने वाले समय में इनके फल मीठे ही होंगे।

**अनुवादः किरण गुप्ता**

# ग्रामीण क्षेत्रों में जल सप्लाई

एम.एम.दत्ता
उप-सलाहकार,
ग्रामीण विकास विभाग

भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में जल सप्लाई तथा सफाई की सुविधा अब केवल कुछ लोगों का विशेषाधिकार नहीं रही अब तमाम ग्रामीण आबादी आधारभूत आवश्यकता के रूप में इन सुविधाओं की मांग करने लगी हैं। इन दोनों सुविधाओं को राष्ट्रीय न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम में शामिल किया गया है। सामाजिक-आर्थिक विकास के लिये सरकार के नये 20 सूत्री कार्यक्रम में भी गांवों को पीने का पानी तथा सफाई सुविधा उपलब्ध कराने को प्रमुखता दी गयी है।

जीवन के पांच महत्वपूर्ण क्षेत्रों के बारे में 1986 में पांच राष्ट्रीय मिशनों के गठन की घोषणा करके प्रधानमंत्री ने दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति का परिचय दिया है। ये मिशन गांवों में पीने का पानी पहुंचाने, तिलहन उत्पादन, रोग प्रतिरक्षण, साक्षरता तथा दूरसंचार के बारे में हैं। इनमें से पीने के पानीं संबंधी मिशन को सबसे महत्वपूर्ण माना गया है।

पीने के पानी के मिशन को यह काम सौंपा गया है कि वह पानी के साधनों से विहीन 1,62,000 समस्याग्रस्त गांवों में पीने के पानी की सप्लाई वर्ष 1990 तक सुनिश्चित करने के उपाय करे। ये गांव ऐसे हैं जहां आसपास के 1.5 किलोमीटर इलाके में पानी नहीं है। पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसे गांवों में 100 मीटर नीचे तक पानी का कोई स्रोत नहीं है या फिर ये गांव ऐसे हैं जहां पानी खराब है, दूषित है। इन गांवों में पानी विज्ञान और टेक्नोलाजी की मदद से कम लागत पर एक समन्वित कार्य योजना बनाकर पहुंचाया जायेगा और इस काम में विभिन्न विभागों, एजेंसियों का सहयोग लिया जायेगा। इसके अंतर्गत मिशन पांच पहलुओं पर ध्यान देगा। ये हैं 1. वैज्ञानिक तरीके से जल स्रोत का पता लगाना, 2. कीड़ों की रोकथाम, 3. फ्लूरासिस की रोकथाम, 4. खारेपन की रोकथाम तथा 5. अतिरिक्त लौह मात्रा पर नियंत्रण। नमूने तैयार करने तथा लागत कम रखने के उपायों के लिये देश में 55 लघु मिशन परियोजनाओं को हाथ में लिया गया है। जल मिशन स्पष्ट कर दिया है कि पहले से विद्यमान सुविधाओं तथा मिशन के अंतर्गत जुटायी जाने वाली नयी सुविधाओं का अगर ठीक से देखभाल तथा संचालन नहीं किया गया तो मिशन का उद्देश्य विफल हो जायेगा। इस सिलसिले में लोगों की भागीदारी और उनके सहयोग को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है तथा सरकार ने गांवों में पीने के पानी की उचित देखभाल के लिये विशेष प्रोत्साहन देने का फैसला किया है।

जनसंख्या के हिसाब से चीन के बाद दुनिया में दूसरा स्थान भारत का है। भारत विश्व का सातवां सबसे बड़ा देश है। भौगोलिक दृष्टि से इसे सात भागों में बांटा जा सकता है– 1. उत्तरी पर्वत, 2. विशाल मैदान, 3. मध्य पहाड़, 4. प्रायद्वीपीय पठार, 5. पूर्वी तटवर्ती प्रदेश, 6. पश्चिमी तटवर्ती प्रदेश, 7. द्वीप समूह।

भारत में पूरे वर्ष को तीन मौसमों में बांटा जा सकता है और उनके बीच अल्पावधि की संक्रमणकालीन मौसम परिस्थितियां विद्यमान रहती हैं। ये तीन मौसम काल हैं– 1. शीतकाल (नवम्बर से फरवरी), 2. शुष्क ग्रीमष्मकाल (मार्च से जून), 3. मानसून वर्षा ऋतु (जुलाई से अक्तूबर जबकि वार्षिक वर्षा का 70 से 80 प्रतिशत तक पानी बरसता है)। हमारे देश में बर्फ और वर्षा का पानी ये दोनों जल साधनों की भरपाई का एक मात्र तथा सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। भारत में वर्षा का अनुपात भी अनोखा है। वर्ष भर में एक ओर जहां राजस्थान के रेगिस्तान में केवल 100 मि.मी. वर्षा होती है वहीं पूर्वोत्तर राज्य मेघालय की खासी पहाड़ियों में चिरांपूंजी में सौ गुना अधिक अर्थात 10,800 मि.मी. पानी गिरता है। मौसम परिस्थितियों तथा भौगोलिक स्थिति के कारण वर्षा में इस भारी अंतर का परिणाम यह होता है कि एक ओर जहां अनेक क्षेत्र सूखे की चपेट में आ जाते हैं वहीं दूसरी ओर एक बड़ा भाग बाढ़ग्रस्त हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार भारत के कुल भौगोलिक

क्षेत्रफल के 13.2 प्रतिशत इलाके में प्रत्येक 3 वर्षों से भी कम समय बाद सूखा पड़ जाता है।

ताजा अनुमानों के अनुसार भारत में मौजूद जल संसाधनों में 21 खरब 90 अरब 90 करोड़ घन मीटर उपलब्ध है (इसमें से सतह पर जल संसाधनों में पानी की मात्रा 17 खरब, 68 अरब घन मीटर तथा भूमि के नीचे जल स्रोतों में पानी की मात्रा 4 खरब 22 अरब 90 करोड़ घन मीटर है)। देश में विद्यमान 6 प्रमुख नदी थालों में उपयोग योग्य जल की मात्रा 6 खरब 66 अरब घन मीटर होने का अनुमान है जोकि देश में कुल सतही जल मात्रा का लगभग 37 प्रतिशत है। विकास के लिये उपलब्ध गतिशील भूजल संसाधन चार खरब 22 अरब 90 करोड़ घन मीटर में से केवल एक खरब घन मीटर (24 प्रतिशत) का ही दोहन हो रहा है। बाकी 3 खरब 22 अरब 90 करोड़ घन मीटर भूमि जल भंडार का दोहन नहीं हो रहा है। देश में वर्षा के कुल पानी का 34 प्रतिशत बहकर समुद्र में बेकार चला जाता है। देश में पीने के लिये पानी की आवश्यकता सतही जल का 7 से 10 प्रतिशत तथा भूजल का केवल 4 प्रतिशत तक ही है।

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार भारत की आबादी 68 करोड़ 51 लाख 90 हजार थी। इसमें से 76.69 प्रतिशत लोग (52 करोड़ 54 लाख 60 हजार) देश के 5 लाख 57 हजार 137 गांवों में बसे हुये हैं। वर्ष 1971 से 1981 तक के दशक में प्रति वर्ष गांवों में आबादी की वृद्धि दर करीब 1.97 प्रतिशत थी जबकि इससे पिछले दशक अर्थात 1961-71 के दौरान यह वृद्धि दर 2.18 प्रतिशत रही। वर्ष 1981-91 के बीच ग्रामीण आबादी की वार्षिक वृद्धि दर 1.58 रहने का अनुमान है।

**ग्रामीण जल सप्लाई दृष्टिकोण**

रोटी, कपड़ा और मकान आदमी की न्यूनतम मूल आवश्यतायें हैं। लेकिन ये आवश्यकतायें जनसंख्या वृद्धि तथा भूमि, जल व ऊर्जा संसाधनों के विकास पर निर्भर हैं। भारत जैसे विकासशील देश में मानव भूमि जल व ऊर्जा संसाधनों के अधिकतम विकास तथा उपयोग की तत्काल आवश्यकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इन चारों संसाधनों की आपूर्ति व मांग आज मानवता के लिये चिंता का विषय बन गया है। इन संसाधनों में असंतुलन से पर्यावरण का संकट उत्पन्न न हो, यह भी अब विचारणीय विषय बन चुका है।

इन चारों संसाधनों में से जल का जीवन के लिये सर्वाधिक महत्व है। साफ, सुरक्षित पानी की आपूर्ति तथा पर्याप्त सफाई सुविधा के महत्व से इंकार नहीं किया जा सकता।

स्वाधीनता से पूर्व ग्रामीण जल आपूर्ति तथा सफाई सुविधा के मामले में प्रगति बहुत धीमी रही। इसके बाद ग्रामीण अंचल में पानी की समस्या पर विचार करके व्यापक योजना उपाय सुझाने के लिये 1948-49 में पर्यावरण सफाई समिति गठित की गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्रामीण जल आपूर्ति व सफाई कार्यक्रम को भी स्वास्थ्य योजना में शामिल किया गया। इस कार्यक्रम को विभिन्न कार्यक्रमों जैसे राष्ट्रीय जल आपूर्ति व सफाई कार्यक्रम, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, स्थानीय विकास कार्यक्रम आदि के अंतर्गत चलाया गया।

पहले केन्द्र और राज्य सरकारों के अनेक मंत्रालय व विभाग ग्रामीण जल आपूर्ति व सफाई कार्यक्रम चलाते थे। इस कारण इस काम में समन्वय की बड़ी समस्या रहती थी। प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं (1951-66) में तथा ग्रामीण जल आपूर्ति क्षेत्र की तीन वार्षिक योजनाओं में कुल खर्च की तुलना में छठी योजना में (1980-85) इस काम पर 19 गुना अधिक राशि खर्च की गयी। इसके बावजूद सातवीं योजना के आरंभ में 1.62 लाख समस्याग्रस्त गांवों तथा 21 करोड़ 19 लाख ग्रामीण आबादी (40%) तक पीने का पानी नहीं पहुंच पाया था। मानव संसाधनों और जल संसाधन प्रबंध की कमी, संचालन व देखभाल में कमजोरी, शहरों और गांवों के बीच असंतुलन, समन्वित दृष्टिकोण का अभाव, अपर्याप्त धन, अपर्याप्त टेक्नोलॉजी आदि कारण इस स्थिति के लिये मुख्य रूप से जिम्मेदार थे।

इस स्थिति पर विचार के बाद भारत सरकार ने ग्रामीण आबादी को साफ पानी दिलाने का पक्का इरादा किया और फलस्वरूप सितम्बर, 1985 में केंद्रीय कृषि मंत्रालय के ग्रामीण विकास विभाग को ग्रामीण जल सप्लाई व सफाई की केन्द्रीय स्तर पर जिम्मेदारी सौंप दी। इस विभाग ने यह कार्यक्रम चलाते समय तीन लक्ष्यों को ध्यान में रखा है। ये हैं:— 1. लागत में कमी, 2. समय लक्ष्य पूरे करना, 3. मिलीजुली टेक्नोलॉजी का उपयोग।

## दशक कार्यक्रम

संयुक्त राष्ट्र महासभा के निर्णय के अंतर्गत चलाये जा रहे अंतर्राष्ट्रीय जल आपूर्ति व सफाई कार्यक्रम को भारत पूरा समर्थन दे रहा है और फलस्वरूप भारत में यह दशक कार्यक्रम 1 अप्रैल, 1981 से 31 मार्च, 1991 तक चलाया जा रहा है। यह दशक अवधि तीन विकास योजनाओं के दौरान पड़ती है। इनमें छठी योजना (1980-85) के अंतिम चार वर्ष, सातवीं योजना के (1985-90) के सभी पांच वर्ष तथा आठवीं योजना (1990-95) का प्रथम वर्ष शामिल है।

दशक कार्यक्रम के आरंभ में अनुमान लगाया गया कि गांवों की 36 करोड़ 20 लाख आबादी को साफ पानी उपलब्ध नहीं है और 52 करोड़ 10 लाख अर्थात लगभग सम्पूर्ण ग्रामीण आबादी को मल व्ययन की पर्याप्त तथा सही सुविधा उपलब्ध नहीं है।

यह अनुमान लगाया गया कि दशक कार्यक्रम लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये 72 अरब 72 करोड़ रुपये की धनराशि (65 अरब 25 करोड़ रुपये ग्रामीण जल आपूर्ति के लिये) की आवश्यकता होगी। सातवीं योजना में ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रमों के लिये 34 अरब 54 करोड़ 50 लाख रुपये निर्धारित किये गए हैं। इस कार्यक्रम के आयोजन तथा कार्यान्वयन की जिम्मेदारी राज्यों की है।

## राष्ट्रीय टेक्नोलॉजी मिशन

प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने 27 फरवरी 1986 को लोकसभा में घोषणा की थी:– "हम अनेक महत्वपूर्ण क्षेत्रों के लिये कई वैज्ञानिक मिशनों का गठन कर रहे हैं ताकि इन क्षेत्रों के लिये आवश्यक धनराशि, समुचित वैज्ञानिक प्रबंध व सभी जरूरी संसाधन उपलब्ध कराये जा सकें... हमने जो क्षेत्र चुने हैं उनमें पीने का पानी भी शामिल है।"

इस प्रकार पीने के पानी के बारे में टेक्नोलॉजी मिशन का शुभारंभ किया गया। अन्य चार मिशन हैं:– 1. रोग प्रतिरक्षण, 2. साक्षरता, 3. तिलहन, 4. दूर-संचार।

जल मिशन के प्रमुख उद्देश्य हैं:–

1. वैज्ञानिक विधि से स्रोत का पता लगाकर उसका विकास।
2. जल एकत्रण व संरक्षण।
3. पानी की खोज के लिये नये रिग व उपकरण।
4. ग्रामीण जल सप्लाई की समस्याओं के लिये एक समन्वित तरीके से वैज्ञानिक व टेक्नोलॉजिकल साधनों का उपयोग।
5. विश्लेषण, मूल्यांकन, देखरेख के बारे में आंकड़े एकत्र करने के लिये प्रबंध सूचना प्रणाली का कम्प्यूटरीकरण।

## मिशन के लक्ष्य

1. बिना पानी वाले बाकी 98,746 समस्याग्रस्त गांवों में मार्च, 1990 तक सप्लाई। (62,008 कठिन समस्या वाले गांवों और 36,738 अन्य गांव आंशिक रूप से)
2. सभी क्षेत्रों में लोगों के लिये प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के हिसाब से 40 लीटर पानी की सप्लाई। इसके अतिरिक्त रेगिस्तानी इलाकों में पशुओं के लिये प्रतिदिन प्रति पशु 30 लीटर पानी।
3. योजना आबंटन के भीतर ये लक्ष्य प्राप्त करने के लिये कम लागत वाली टेक्नोलॉजी विकसित करना।
4. पानी की लगातार सप्लाई के लिये पानी की किफायत के उपाय।
5. चल रहे कार्यक्रम में सुधार और इनके खर्च में कमी लाना।

## मिशन की नीति

1. छठी योजना के बाकी बचे समस्याग्रस्त गांवों में सप्लाई (1980 सूची में से)
2. वे सभी गांव जहां पानी के कोई स्रोत नहीं है (1985 की सूची वाले)
3. खराब, दूषित पानी वाले सभी गांव।
4. वे सभी गांव जहां जल सप्लाई प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 10 लीटर से कम है।
5. वे सभी गांव जहां प्रति व्यक्ति जल सप्लाई 40 लीटर से कम है।

गांवों में पानी की आपूर्ति की कई समस्यायें हैं और हर क्षेत्र में समस्यायें अलग-अलग तरह की हैं। इन समस्याओं के संदर्भ में 25 राज्यों व तीन केन्द्र शासित क्षेत्रों में 55 मिनी मिशन परियोजना क्षेत्र हाथ में लिये गये हैं। मिशन जल सप्लाई कार्यक्रमों के अंतर्गत विज्ञान व टेक्नोलॉजी के जरिये निम्नलिखित उपाय कर रहा है:–

1. दूर संवेदन (उपग्रह चित्र, हवाई चित्र) तकनीक के उपयोग से हाल के वर्षों में भूमि के नीचे जल स्रोत का पता लगाया गया है। इस तकनीक में काफी सफलता मिली है।
2. खुदाई तकनीक के अंतर्गत आधुनिक खुदाई के बरमें (रिग) कुओं की इलेक्ट्रोलार्गिंग,, पम्प सेटों का उपयोग किया जा रहा है।
3. पुनः चालू करने की तकनीक के अंतर्गत हाईड्रोफैक्चरिंग तकनीक से देश में पहली बार कुओं को फिर सक्रिय बनाया गया है और बोर कुओं को सफल बनाने में भी इसका उपयोग किया गया है। केन्द्र सरकार ने ऐसे कुल 15 यूनिट कुछ राज्यों के लिये स्वीकृत किये हैं। इनमें से 6 मध्यप्रदेश, 4 महाराष्ट्र, 3 गुजरात, 2 राजस्थान के लिये हैं। इनका उपयोग वर्तमान सूखे की स्थिति से निपटने के लिये विशेष रूप से किया जा रहा है।
4. जल परीक्षण कार्य को समुचित महत्व दिया जा रहा है। स्थिर व चलती-फिरती जल परीक्षण प्रयोगशालाओं की स्थापना की जा रही है। आसान जल परीक्षण किटें भी तैयार की गई हैं।
5. पानी की सफाई के अंतर्गत अतिरिक्त फ्लोराइड व लौह मात्रा को दूर करने के लिये घर में इस्तेमाल के लिये नलगोंडा तकनीक के पैकेज तथा सामुदायिक संयंत्र तैयार किये गये हैं। देश में पानी का खारापन दूर करने की टेक्नोलॉजी में सुधार के लिये जरूरी वैज्ञानिक, टेक्नोलॉजिकल व इंजीनियरी सामान तैयार करने के लिये एक राष्ट्रीय कार्य दल बनाया गया है। पानी में प्रदूषण, गंदगी, कीड़े दूर करके उसे साफ करने के लिये रेत फिल्टर, क्लोरीन आदि के पैकेज तैयार किये गये हैं।
6. पानी के संरक्षण को जल मिशन में उच्च प्राथमिकता दी गयी है। पानी को बचाये रखने के परम्परागत स्रोतों जैसे नदी, तालाब, चैक बांध, ताल आदि के साथ-साथ जल संरक्षण के आधुनिक उपाय भी किये जा रहे हैं। इनमें एक्विफरों की गणितीय माडलिंग, एक्विफरों की आयु का अनुमान लगाना, जल को वाष्प बनने से रोकने जैसे उपाय शामिल हैं। वर्षा के जल को एकत्र करने के लिये फैरों सीमेंट टेक्नोलॉजी का उपयोग किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में और विशेषकर स्त्रियों को टेक्नोलॉजी की जानकारी सरल तरीके से देने को महत्व दिया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त समुचित शिक्षा व प्रशिक्षण देकर जल मिशन के लिये मानव संसाधनों के विकास पर भी जोर दिया जा रहा है। इस सम्बन्ध में शिक्षा संस्थानों के साथ विशेष समन्वय स्थापित किया जा रहा है। ग्रामीण जल सप्लाई व सफाई कार्यक्रम के लिये आवश्यक सभी साज-समान देश में ही तैयार होता है।

**सफाई**

यह महसूस किया गया है कि ग्रामीण इलाकों में सफाई कार्यक्रम भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि जल सप्लाई कार्यक्रमों पर जोर दिया गया है। गांवों में सफाई केवल व्यवस्थित शौचालय बना देने तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका संबंध स्वास्थ्य से सम्बद्ध तमाम बातों से है जिनमें घर के कचरे का निपटान, कृषि कूड़ा-करकट का निपटान, गोबर का निपटान, घर में और आसपास सफाई,व्यक्तिगत सफाई तथा निजी एवं सामुदायिक रहन-सहन के तौर-तरीकों में परिवर्तन की बातें शामिल हैं। इस बारे में उपाय किये जा रहे हैं और लोगों को जानकारी देकर जागरूक बनाया जा रहा है।

सरकार ने इस काम के लिये अधिक धन की व्यवस्था भी की है। दो ग्रामीण विकास कार्यक्रमों—ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में सफाई कार्य भी शामिल किया गया है। इनके अलावा अलग से एक ग्रामीण सफाई कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है। इनमें मुख्य रूप से गांवों में निर्धन तथा सुविधाहीन लोगों के लिये सरकारी खर्च पर शौचालयों की व्यवस्था की जाती है। इस कार्य की प्रगति अभी बहुत धीमी है। अनुमान है कि 1987 में केवल 3 प्रतिशत ग्रामीण लोगों को यह सुविधा उपलब्ध थी जबकि लक्ष्य यह है कि 1990 तक 25 प्रतिशत लोगों को यह सुविधा उपलब्ध करा दी जाये। प्रधानमंत्री ने इस संबंध में मुख्य मंत्रियों को सलाह दी है कि वे इस कार्यक्रम के महत्व पर जोर दें और इसे सफल बनाने में खुद दिलचस्पी लें ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन स्तर में सुधार आ सके।

**अनुवादः ओमप्रकाश दत्त**

# ग्रामीण जल आपूर्ति और ग्रामीण निर्धन योजना अवधि में उपलब्धियाँ

निर्मल गांगुली

ग्रामीण जनता को स्वच्छ जल की सप्लाई मुहैया करने का उद्देश्य सर्वोच्च महत्व का विषय है क्योंकि यह एक बुनियादी न्यूनतम आवश्यकता है और इसके बिना ग्रामीण जनता के रहन-सहन के स्तर में सुधार नहीं हो सकता है। विभिन्न योजना अविधियों के दौरान ठोस प्रयास करने के बावजूद ग्रामीण आबादी के प्रत्येक क्षेत्र में स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है। इस बात को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ग्रामीण क्षेत्रों में जल सप्लाई के स्तर से संबंधित उपलब्ध आंकड़े उन कठिनाइयों और असुविधाओं के द्योतक नहीं हैं जिसका उस क्षेत्र की गरीब जनता विशेषकर स्त्रियों और बच्चों द्वारा सामना करना पड़ता है जहां पानी का अभाव है या पानी प्रदूषित है। यह कहने की आवश्कता नहीं है इस विशाल कार्य में, स्थानीय जनता, स्वयंसेवी एजेंसियों, अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों का सहयोग लेना होगा। यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध पेयजल की सप्लाई की सुविधाएं अधिकांशतः गांवों में रहने वाले गरीब लोगों को ही उपलब्ध करायी जायें।

**विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत हुई प्रगति**

तीसरी पंचवर्षीय योजना तक ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की सप्लाई करना सामूहिक विकास कार्यक्रम की सुविधा सम्बन्धी योजना का एक भाग था। इसके अलावा श्रमिकों द्वारा स्वैच्छिक रूप से भाग लेकर भी इस कार्य को शुरू किया गया। स्थानीय विकास निर्माण कार्यक्रम और पिछड़े वर्ग के कल्याण कार्यक्रम में भी जल सप्लाई की योजना को शामिल किया गया था। 1954 में स्वास्थ्य मंत्रालय के राष्ट्रीय जल सप्लाई और स्वच्छता कार्यक्रमों से भी इन प्रयासों को बढ़ावा मिला।

तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961-66) के दौरान पीने के पानी की सप्लाई और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों की सुविधा सम्बन्धी योजना का एक महत्वपूर्ण अंग बन गयी और तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान, केंद्रीय योजना के अन्तर्गत, अधिकांश राज्यों में विशेष अन्वेषण डिविजनों की स्थापना की गयी थी ताकि जल सप्लाई की स्थिति विशेषकर कमी वाले क्षेत्रों और जहां जल से बीमारियां पैदा होने की सम्भावना थी वहां मूल्यांकन किया जा सके।

तीसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान, विशेष अन्वेषण डिवीजन उन गांवों की पहचान करने के लिए पहला कदम थी, जो पेयजल की गुणवत्ता और सुगमता की दृष्टि से समस्या प्रधान गांवों के रूप में जाने जा सकते हैं। 1964-65 में इन मंडलों द्वारा एकत्रित किये गये प्रारंभिक आंकड़ों से यह पता चला कि ग्रामीण आबादी का लगभग दो तिहाई भाग उन क्षेत्रों में रहता था जहाँ कुओं जैसे स्थानीय स्रोतों से सुरक्षित पीने का पानी अपेक्षाकृत आसानी से मुहैया किया जा सकता था। शेष एक तिहाई आबादी ऐसे गांवों में रहती थी जो जलाभाव से पीड़ित थे और जहां इंजीनियरी दक्षता, अतिरिक्त वित्तीय परिव्यय और दीर्घगामी कार्य की आवश्यकता पड़ेगी। इन गांवों को निम्नलिखित भागों में रखा गया है–

1. ऐसे गांव, जहां समुचित दूरी जैसे 1.6 कि.मी. के भीतर पेयजल के सुनिश्चित स्रोत नहीं हैं।
2. जहां बीमारियों की सम्भावना होती है जैसे हैजा, गिनीकृमि,
3. वे गांव जहां उपलब्ध पानी में लौह फ्लोराइड्स और अन्य विषैले तत्वों का बाहुल्य हो।

पहली कोटि को अभावग्रस्त और दुसाध्य गांवों के रूप में परिभाषित किया गया है और दूसरी कोटि को समस्या प्रधान गांवों के रूप में परिभाषित किया गया है।

चौथी योजना (1969-74) के दौरान ऐसे क्षेत्रों को और बढ़ा दिया गया जहां पानी का अत्यधिक अभाव था और जहां जल से पैदा होने वाली बीमारियां हो सकती थीं। जिसके लिए ग्रामीण जल सप्लाई योजना के अन्तर्गत 64

प्रतिशत धन की व्यवस्था की गयी थी। इसी बीच, 1972-73 में केन्द्र द्वारा एक योजना लागू की गयी थी जिसे "एक्सलेरेटेड रूरल वाटर सप्लाई" के नाम से जाना जाता था। इसका एक मुख्य उद्देश्य था कि दुसाध्य क्षेत्रों और समस्या प्रधान गांवों (1.53 लाख) में पीने का पानी मुहैया किया जाए। इन क्षेत्रों की पहचान निर्धारण सर्वेक्षण (1972) द्वारा भारत सरकार की पहल पर की गयी थी।

पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79) में पीने के पानी के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में काफी तेजी लायी गयी और इसे न्यूनतम आवश्यकताओं के राष्ट्रीय कार्यक्रम के एकीकृत भाग के रूप में गठित किया गया।

**छठी योजना लक्ष्य और निष्पादन**

छठी योजना तैयार करते समय, समस्या प्रधान गांवों की पहचान करने का काम अभी पूरा किया जाना था। उस समय उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर छठी योजना में 1.9 लाख गांवों को शामिल करने का लक्ष्य रखा गया था। जब इन गांवों की पहचान करने का काम पूरा कर लिया गया तब इनकी संख्या 2.31 लाख हो गयी। एक विशाल योजना शुरू की गयी ताकि उन समस्या प्रधान गांवों को पानी मुहैया किया जा सके जो बाढ़ में बह गये थे। इसका नतीजा प्रभावशाली रहा। यह अनुमान लगाया गया कि कुल 2.31 लाख गांवों में से समस्या प्रधान ऐसे गांवों में 1.91 लाख और समस्या रहित 47000 गांवों को छठी योजना के अन्त तक जल सप्लाई की सुविधाएं मुहैया कर दी जाएंगी। ऐसा करने से ग्रामीण क्षेत्रों की 54 प्रतिशत आबादी छठी योजना के अन्त तक ग्रामीण जल सप्लाई योजना में शामिल कर ली गयी है। ये उपलब्धियाँ तभी सम्भव हो पायीं जब इसके लिए 2485.33 करोड़ रुपये की राशि खर्च की गयी। 1566.68 करोड़ रुपये राज्यों से और 918.65 करोड़ रुपये केन्द्रीय सरकार ने दिये इसमें 1916.00 करोड़ रुपये की राशि प्रोत्साहन बोनस योजना के अन्तर्गत भी शामिल है।

यह उल्लेखनीय है कि छठी योजना के दौरान की गयी प्रगति के कारण, ग्रामीण जल सप्लाई योजना द्वारा शामिल ग्रामीण आबादी का प्रतिशत मार्च 1981 के 31 प्रतिशत से बढ़कर मार्च 1985 में 54 प्रतिशत हो गया।

**सातवीं योजना में परिप्रेक्ष्य**

अन्तर्राष्ट्रीय पेयजल सप्लाई और स्वच्छता विलेख (1981-91) के उद्देश्यों के अनुसार सातवीं योजना अवधि के दौरान सभी लोगों को पेयजल की सुविधा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है।

आशय यह नहीं है कि खर्चीली और परिष्कृत जल सप्लाई सेवाएं सुलभ करायी जायें बल्कि सरल और कम खर्चीले साधन जुटाये जायें। यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत जैसे विशाल देश में सभी स्थानों पर जल की एक समान सप्लाई करना सम्भव नहीं है। धरती और भूतल जल के स्रोतों की चरम स्थिति की व्यापक विभिन्नताओं के लिए यह अपेक्षित है कि विभिन्न किस्म के साधन अपनाये जायें जो किफायती हों और स्थानीय जनता की जरूरतों के अनुरूप हों।

सातवीं योजना की नीति में यह भी उल्लेखनीय बात है कि इस प्रकार के कार्यक्रम के लिए इन कार्यक्रमों में अर्थात सूत्रीकरण, कार्यान्वयन और जल सप्लाई योजनाओं का अनुरक्षण, जनता का सक्रिय सहयोग अपेक्षित है। बड़ी मात्रा में पानी की चोरी भी रोकी जा सकती है यदि स्थानीय लोगों का सहयोग प्राप्त किया जाये। ग्रामीण जल सप्लाई के क्षेत्र में सातवीं योजना की नीति में यह कहा गया है कि इस कार्यक्रम के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए राजकोष का बोझ कम किया जा सकता है यदि लाभभोगी पानी की सप्लाई के लिए भुगतान करने के लिए तैयार हों। हालांकि यह सच है कि गरीब वर्ग से जल की सप्लाई के लिए भुगतान करने की प्रत्याशा नहीं की जा सकती है। लेकिन फिर भी स्थानीय तौर पर पहल करके बहुत से गांवों से थोड़ा बहुत प्रभार वसूल किया जा सकता है जिनसे कम से कम अनुरक्षण खर्च पूरा किया जा सकता है।

सातवीं योजना में अधिक से अधिक ग्रामीण आबादी के पानी की व्यवस्था की जा सके, एम.एन.पी. के अन्तर्गत ग्रामीण जल सप्लाई क्षेत्र उन सभी गांवों तक बढ़ाने की जरूरत है जिन्हें छठी योजना अवधि के अन्त तक समस्या प्रधान गांवों के रूप में नहीं पहचाना जा सका। यह उल्लेखनीय है कि छठी योजना के दौरान इस क्षेत्र में निवेश में बहुत अधिक बढ़ोतरी हुई है विशेषकर ग्रामीणों के लिए जल सप्लाई करने के संदर्भ में। इस कार्यक्रम को दी गयी प्राथमिकता से यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि केन्द्र सरकार ने "एक्सलेरेटेड वाटर सप्लाई प्रोग्राम" के अन्तर्गत क्रमिक रूप से केन्द्रीय सहायता बढ़ाकर समस्या प्रधान गांवों

को पेयजल की सप्लाई मुहैया करने में राज्य सरकारों की बड़ी सहायता की है। ए.एच.पी. और प्रोत्साहन योजनाओं के अधीन छठी योजना में ग्रामीण जल सप्लाई कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए 918.65 करोड़ रुपये की सहायता राज्यों को दी गयी है और सातवीं योजना में यह राशि इसके डेढ़ गुणा कर दिये जाने की संभावना है।

**सातवीं योजना के लक्ष्य**

छठी योजना के प्रारम्भ में 2.31 लाख गांवों की समस्या प्रधान गांवों के रूप में पहचान की गयी थी। गहन और भारी निवेश करने के परिणामस्वरूप छठी योजना के दौरान 2.31 लाख गांवों में से 1.92 लाख गांवों के लिए पानी की व्यवस्था कर दी गयी थी और शेष 39,000 गांवों में सातवीं योजना अवधि में यह व्यवस्था की जायेगी। लेकिन, अनेक राज्यों में सूखा पड़ने, निम्न जल-तल के कारण ट्यूबवेलों से पानी की सप्लाई न होने और पानी जल स्रोतों का रासायनिक पदार्थों और जीवाणुओं से दूषित होने के कारण देश में समस्या प्रधान गांवों की संख्या और अधिक हो गयी है। सातवीं योजना में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि छठी योजना के 39,000 गांवों और सातवीं योजना के दौरान समस्या प्रधान गांवों के रूप में पहचाने गये गांवों को प्राथमिकता के आधार पर अलग-अलग किया जाये।

सातवीं योजना में प्राथमिकता के आधार पर निम्नलिखित गांवों को जल सप्लाई की व्यवस्था की जानी है:—

1. सातवीं योजना के प्रारम्भ में मूल सर्वेक्षण के आधार पर शेष समस्या प्रधान गांवों को शामिल करना।
2. छठी योजना के प्रारम्भ में समस्या प्रधान गांवों को शामिल करना।
3. आंशिक रूप से शामिल गांवों/आबादी को शामिल करना।

सातवीं योजना के दस्तावेजों के अनुसार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के लिए 40 लीटर पानी आवश्यक है।

**सातवीं योजना में प्रगति**

1985-86 के दौरान 45,248 गांव शामिल किये गये थे जबकि लक्ष्य 30,637 का था। 1986-87 के 48,350 गांव शामिल किये गये जबकि लक्ष्य 35,930 गांवों का था।

1987-88 के दौरान, अभी तक 1986 में गठित पेयजल से सम्बंधित टेक्नोलॉजी मिशन द्वारा ग्रामीण जल सप्लाई के लिए नये सिरे से जोर डाला गया। केन्द्रीय रूप से प्रायोजित चालू एक्सलेरेटेड रूरल वाटर सप्लाई प्रोग्राम और राज्य सरकार द्वारा कार्यान्वित न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के जल तत्व के लिए अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया गया ताकि टेक्नोलॉजी मिशन नीति के अन्तर्गत सुव्यवस्थित तरीके से अधिक समस्या प्रधान गांवों को शामिल किया जा सके। आशय यह है कि सातवीं योजना के अन्त तक समस्या प्रधान शेष सभी गांवों में ग्रामीण आबादी के लिए स्वच्छ पेयजल मुहैया किया जाये, यह तभी किया जा सकता है जब एकीकृत और अंतः अनुशासनिक दृष्टिकोण अपनाकर पेयजल की लगातार सप्लाई के लिए संरक्षण उपायों के साथ योजना आबंटन की कठिनाइयों के साथ कारगर टेक्नोलॉजी मिशन लागत तैयार की जाये।

**टेक्नोलॉजी मिशन-ध्येय और उद्देश्य**

ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल से सम्बंधित समस्याओं पर काबू पाने की दृष्टि से केन्द्र सरकार द्वारा 1986 में गांवों में पेयजल से सम्बंधित टेक्नोलॉजी मिशन और रिलेटेड वाटर मैनेजमेंट का प्रवर्तन किया गया था जिसके विशेष उद्देश्य इस प्रकार थे:—

1. 1990 तक अवशिष्ट समस्या प्रधान सभी गांवों को शामिल करना।
2. प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 40 लीटर की दर से पेयजल की सप्लाई करना (राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्रों में मवेशियों की मांग सहित 70 एल.पी.सी.डी.)।
3. योजना आबंटन की बाध्यताओं के लिए इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए लागत प्रभावी तकनीक निकालना और 4.पेयजल की निर्बाध आपूर्ति के लिए संरक्षण उपाय करना।

उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों में 50 मिशन और 5 उप-मिशन स्थापित किये गये थे:—

1. गिनी कीड़ों का विनाश
2. फ्लूओरोफेस पर नियन्त्रण
3. पेयजल में से फालतू लौह को निकालना
4. पानी का संरक्षण और भूजल को पुनः चार्ज करना।

**अकाल के दौरान पेयजल सुलभ कराना**

वर्ष 1987 में अकाल के दौरान 15 राज्यों में 265

जिलों के लगभग 54310 गांव पेयजल के अभाव से ग्रस्त हुए थे। गुजरात, राजस्थान और उड़ीसा के आदिवासी क्षेत्र सर्वाधिक प्रभावित हुए हैं। अकाल की स्थिति से प्रभावी तौर पर निपटने के लिए ग्रामीण विकास विभाग ने पेयजल संकट का मुकाबला करने के लिए एक आपातिक योजना बनायी है जिसके अन्तर्गत सभी राज्यों से कहा गया हैं कि वे अपने योजना कार्यक्रमों की पुनः प्राथमिकता निर्धारित करें तथा सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्रों के लिए धन राशि सुलभ करायें। स्रोत खोजने के कार्यकलापों तथा योजना के कार्यक्रमों के अकाल मास्टर कार्यक्रम में एकीकरण पर तत्काल जोर दिया गया है।

मौसम विभाग, केन्द्रीय भूजल बोर्ड, केन्द्रीय जल आयोग आदि के सदस्यों के साथ ग्रामीण विकास विभाग में एक दल गठित किया गया है जो देश में पेयजल की मांग एवं आपूर्ति स्थिति का नियमित मूल्यांकन करेगा और उन पर निगाह रखेगा तथा मानसून निष्पादन के साथ समायोजित करते हुए पेयजल उपलब्धता के पूर्वानुमान के लिए माडल विकसित करेगा।

**ग्रामीण गरीबों की ग्रामीण जल आपूर्ति तक पहुंच को सुधारने के लिए कुछ सुझाव**

ग्रामीण जल आपूर्ति योजना और अब तक ग्रामीण की जल तक पहुंच में हुई प्रगति के आधार पर नीति-निर्धारकों के लिए निम्नलिखित सुझावों पर विचार करना आवश्यक है:—

(क) पेयजल स्थलों की सुविधा का अधिकतम उपयोग सुनिश्चित करने के लिए इनका स्थान-निर्धारण बहुत महत्वपूर्ण है। इस सम्बंध में, यह उल्लेखनीय है कि यदि ये स्थल जनसंख्या बहुल स्थानों से दूर हैं तो दूरी के कारण इन सेवाओं का अधिकतम उपयोग नहीं हो सकता। अतः यह सुनिश्चित किया जाये कि पेयजल स्थलों का उपयुक्त स्थान निर्धारण किया जाये।

(ख) योजना सिद्धान्त को अधिक व्यावहारिक ढंग से सुनिश्चित करने के लिए समस्याग्रस्त गांवों के चयन की शर्तों को और लागू करने की भी आवश्यकता है।

(ग) निर्धन वर्गों की अधिक जनसंख्या वाले स्थानों पर पर्याप्त संख्या में पेयजल स्थलों की व्यवस्था की जाये।

(घ) पेयजल स्थलों के रख-रखाव और मरम्मत पर विशेष ध्यान दिया जाये क्योंकि कई बार टूट-फूट अथवा खराबी के कारण उनमें पानी की धारा अपर्याप्त हो जाती है।

(ङ) पेयजल स्थलों का स्थान निर्धारण करते समय इस पर भी पर्याप्त विचार किया जाये कि अन्य उपलब्ध स्रोतों का उपयोग नहीं होता हो। इससे पेयजल स्थलों का अधिकतम उपयोग नहीं हो पाता है।

(च) इसका मूल्यांकन करने के लिए कि निर्धन वर्गों को ग्रामीण जल सप्लाई योजनाओं का कितना लाभ मिलता है नियमित रूप से मानीटरिंग की जाये और इसके साथ-साथ आवश्यक उपचारात्मक कार्रवाई की जाये।

(छ) ग्रामीण जल आपूर्ति योजनाओं को अधिक प्रभावी बनाने के लिए ग्रामीण जल आपूर्ति योजना बनाने और उनके क्रियान्वयन के कार्य में ग्रामीण जनता और स्वयंसेवी एजेंसियों को शामिल किया जाये।

**निष्कर्ष**

भारतीय (प्रायद्वीप) के आकार जैसे देश में ग्रामीण जनसंख्या के प्रत्येक वर्ग को पेयजल उपलब्ध कराना एक विशाल कार्य है। इसके अलावा, ग्रामीण जनता को पेयजल उपलब्ध कराने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह सुनिश्चित करने के लिए ध्यान रखना आवश्यक है कि पेयजल की उपलब्धता के विस्तार का लाभ समान रूप से बांटा जाये। हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में आमदनी और सम्पत्ति के बंटवारे में असमानता के कारण यह बेहद जरूरी है। यह सुनिश्चित करने के लिए, ग्रामीण निर्धनों का इसमें सक्रिय रूप से भाग लेना अनिवार्य है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, जल संरक्षण और पानी के कनेक्शनों के सही रख-रखाव के विकास के लिए सामाजिक संचार की कोई प्रणाली हो। इस उद्देश्य के लिए जन-संचार के माध्यमों का प्रभावशाली उपयोग करना होगा। ग्रामीण जनता को जल आपूर्ति की व्यवस्था के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी मिशन की स्थापना से भी भविष्य के लिए आशा बंधी है। बहरहाल, सर्वसंबंधित का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे एक ऐसा स्तर प्राप्त करने की चेष्टा करें कि निकट भविष्य में देश में पेयजल उपलब्धता की दृष्टि से समस्याग्रस्त गांवों की संख्या शून्य हो जाये।

**अनुवादः सुभाष शर्मा**

# ग्रामीण विकास के चालीस वर्ष
# एक विश्लेषण

डॉ. कृष्ण मुरारी

स्वतन्त्र हुए अधिकांश राष्ट्रों की तरह भारत भी किसी हद तक लोगों की गरीबी और बड़े पैमाने पर बेरोजगारी की दो अति विशाल समस्याओं से बड़ी गम्भीरता के साथ जूझ रहा है। सभी छः पंचवर्षीय योजनाओं के नीति सम्बन्धी एजेन्डा में गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी दो प्रमुख पहलुओं की ओर अधिक ध्यान दिये जाने के कारण हमारी आर्थिक उपलब्धि काफी अच्छी रही है। गरीबी को दूर करने के लिए अथवा इसके प्रकोप को कम करने और गरीबों को राहत देने के लिए सरकार की ओर से अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए हैं जिनसे निस्संदेह गरीब और पिछड़े वर्ग विशेष रूप से अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को कुल मिला कर लाभ पहुंचा है।

ग्रामीण विकास हेतु नीतियों को मोटे तौर पर दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

(क) स्वतंत्रता पूर्व युग

(ख) स्वतंत्रता पश्चात युग

**स्वतंत्रता पूर्व युग**

इसे अग्रगामी और परिवीक्षात्मक प्रयासों की दो श्रेणियों में पुनः विभाजित किया जा सकता है।

अग्रगामी प्रयासों के अन्तर्गत 1921 के श्रीनिकेतन संस्थान का विशेष उल्लेख किया जा सकता है जिसके अग्रणी रवीन्द्रनाथ ठाकुर थे। अन्य मुख्य प्रयोग थे— श्री एफ.एल. ब्रेने का 1920 का गुडगांव का प्रयोग, डॉ. स्पेन्सर हैच द्वारा आत्मबलिदान नीति, श्री वी.के. कृष्णमाचारी द्वारा 1930 के मध्य में बड़ौदा प्रयोग। मोहनदास करमचन्द गांधी का 19 सूत्री "ग्रामोदय" का प्रयोग उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, मद्रास, गुजरात आदि जैसे अनेक राज्यों में किया गया था। परिवीक्षा प्रयासों में आते हैं श्री एस.के.डे द्वारा 1947 में निलोखेड़ी अथवा मजदूर मॉजिल (जो काम करेगा वही खाएगा) और इटावा परियोजना (1948-52)। ये दोनों कार्यक्रम 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मार्गदर्शक सिद्धांत बने।

**स्वतंत्रता पश्चात युग**

भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त कर लेने के बाद शुरू में ही गांवों के विकास और लाखों मेहनतकश मजदूरों की बहुसंख्या के महत्व को समझा।

अधिक अन्न उपजाओ समिति की सिफारिशों पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952), राष्ट्रीय विस्तार सेवाएं (1953), श्री बलवन्तराय मेहता समिति की रिपोर्ट आदि की सिफारिश पर पंचायती राज (1959) का मुख्य उद्देश्य भारतीय गांवों में अहिंसा के द्वारा-परम्परागत, सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक परिवर्तन लाना था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम, एक शैक्षिक संगठनात्मक कार्यक्रम के रूप में शुरू किया गया था जो 5,50,000 से अधिक गांवों के 36 करोड़ लोगों तक पहुंचना था। इसका उद्देश्य अपनी सहायता आप करना और लोगों को सहयोग प्राप्त कराना था। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसे "क्रान्तिकारी कार्यक्रम" की संज्ञा दी थी। लेकिन बहुत-सी कठिनाइयों, स्थानीय संगठनों की कमी और अधिक खर्चीली होने के कारण सामुदायिक विकास कार्यक्रम अधिक सफल नहीं हो सका।

योजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष श्री अशोक मेहता ने 1976 में दिल्ली में सामुदायिक विकास मंत्रियों के सम्मेलन में बोलते हुए, इस कार्यक्रम के बारे में गांवों की अनभिज्ञता के लिए सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अधिकारियों को दोषी ठहराया था। पंडित नेहरू ने कहा था कि सामुदायिक विकास के अधिकारी "अफसरशाही" का शिकार हो गए हैं और पूरा कार्यक्रम गर्त में मिल गया है।

1960 के दशक के मध्य में सामुदायिक विकास के आलोचकों ने इस पर विफलता की मोहर लगा दी और

इसके परिणामस्वरूप सामुदायिक विकास मंत्रालय को मानो ग्रहण-सा लग गया और 1966 में इसका अस्तित्व समाप्त हो गया। सरकार में सामुदायिक विकास निषेध हो गया।

1960 के दशक के अन्त में काफी प्रचलित हरित क्रान्ति का आशय ग्रामीण परिसर के लोगों के लिए हरियाली लाने का एक अच्छा विचार था लेकिन जो हुआ वह कहीं अधिक हतोत्साहित करने वाला था। हालांकि इससे खाद्यान्न के मामले में हमारा देश आत्मनिर्भर हो गया लेकिन इससे भारत के ग्राम्य जीवन की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में कोई समग्र परिवर्तन नहीं आ सका। ग्रामीण लोगों को अभी भी शहरी विशिष्ट वर्ग पर निर्भर रहना पड़ता है। वे लोग दास बन कर रह गए।

1967 और 1972-73 के भयंकर सूखे की स्थिति से प्राप्त अनुभवों ने नीति निर्माताओं को चौथी और पांचवीं योजनाओं के अंतर्गत गहन कृषि विकास कार्यक्रम (1966), एस.एफ.डी.ए. (1969), डी.पी.ए.पी. (1970), एम.एफ.ए.एल. (1971), सी.एस.आर.इ. (1971), पर्वतीय क्षेत्र विकास (1972), सीमा आदिवासी क्षेत्र विकास, मुख्य क्षेत्र विकास (1976), विशेष पशुधन उत्पादन कार्यक्रम (1974-75), काम के बदले भोजन (1977) जैसे अनेक "गरीबी हटाओ" कार्यक्रम शुरू करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इन कार्यक्रमों के लिए वैन्कटापैया समिति (1969), राष्ट्रीय कृषि आयोग, भारतीय रिजर्व बैंक की अखिल भारतीय ऋण समीक्षा समिति (1969), अखिल भारतीय कृषि गणना रिपोर्ट (1970-71) और अखिल भारतीय ऋण निवेश सर्वेक्षण रिपोर्ट (1971-72) में सिफारिशें की गई थीं। एक बार पुनः एस.एफ.डी.ए., एम.एफ.ए.एल., सी.एस.आर.ई. और डी.पी.ए.पी. के समग्र लाभ गांवों के सम्पन्न लोगों ने हथिया लिए। वर्ष दर वर्ष सूखे की स्थिति में शुरू किए गए सामान्य राहत कार्य व्यर्थ सिद्ध हुए और भ्रष्टाचार के अड्डे बन गए जिसमें अफसरसाही और स्थानीय प्रभुसत्ता प्राप्त लोगों ने सरकार और गरीबों को लूटा।

1974 में प्रकाशित रिर्जव बैंक की रिपोर्ट पर गम्भीरता से विचार किया गया। 1977-79 के दौरान जनता सरकार ने वर्ष दर वर्ष के आधार पर चलने वाली योजनाओं के प्रयोगात्मक प्रयोग पर बल दिया और 1977 में पंचायती राज संबंधी श्री अशोक मेहता समिति की नियुक्ति की जिसने 132 सिफारिशें कीं। इसने जिन मुख्य बातों पर बल दिया वे थीं (1) नीति निर्माण तथा नीति कार्यान्वयन का विकेन्द्रीकरण, (2) दोहरा पंचायती राज, पहला जिला स्तर पर (यह राज्य से नीचे के विकेन्द्रीकरण की पहली मद थी) और दूसरा 15,000 से 20,000 की जनसंख्या के गांवों को कवर करने वाली मण्डल पंचायत, (3) स्थानिक आयोजना (4) चुने हुए न्याय पंच (5) महिलाओं, अनुसूचित जातियों/जनजातियों के आरक्षण के साथ पंचायती राज निकायों के समय पर चुनाव (6) राजनैतिक दलों, स्वयंसेवी एजेंसियों, शिक्षाविदों, सामुदायिक औद्योगिक सदनों आदि की भूमिका।

वर्ष 1978-79 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य गरीबी और बेरोजगारी पर प्रहार करना था। यह सोचा गया था कि आय और बेरोजगारी पर इसके प्रभाव से अनुमान लगाए गए अनुसार बुनियादी स्तर पर इससे एक समग्र परिवर्तन आएगा। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जांची गई विभिन्न विकास नीतियों और एस.एफ.डी.ए., एम.एफ.ए.एल., डी.पी.ए.पी., सी.ए.डी. और ऐसे ही अन्य अनेक ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन की मार्फत प्राप्त हुए अनुभवों का समिश्रण है। यह एक केन्द्रीय प्रायोजित लाभार्थी उन्मुख कार्यक्रम है जो 2 अक्तूबर, 1980 से पूरे देश में चलाया गया है। कार्यक्रम के अन्तर्गत लक्षित जनसंख्या अर्थात छोटे तथा सीमान्त किसानों, काश्तकारों, बटाईदारों, भूमिहीन श्रमिकों, अनुसूचित जातियो और जनजातियों के सदस्यों की ओर ध्यान दिया गया है। इस कार्यक्रम के बहुस्तरीय, बहुक्षेत्रीय और बहुविभागीय कार्यक्रम बनाने के लिए इसमें ट्राइसेम, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारन्टी कार्यक्रम सभी को मिला दिया गया था। इस कार्यक्रम का उद्देश्य उत्पादक स्वरूप की सम्पत्तियां उपलब्ध कराने की नीति द्वारा चुने हुए परिवारों को दीर्घावधि आधार पर गरीबी की रेखा से ऊपर उठाना है। वनरोपण सिंचाई और अन्य सहायक धन्धों, कुटीर तथा कृषि आधारित लघु उद्योगों और वास्तव में किसी भी जीवनक्षम कार्य को लाभार्थी परिवार के अनुकूल हो, की मार्फत रोजगार के अतिरिक्त अवसर सृजित करना है। कार्यक्रम के अन्तर्गत सहायता के लिए अन्य मदें हैं, कृषि, पशुपालन, मछली पालन, सुअर पालन, मुर्गीपालन आदि।

छठी पंचवर्षीय योजना में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को सर्वोच्च प्रथमिकता दी गई थी और ग्रामीण भारत गरीब लोगों की आय बढ़ाने पर बल दिया गया था। इस योजना के अंतर्गत सरकार की यह वचनबद्धता थी कि गरीबी की रेखा से नीचे बसर कर रहे लोगों के प्रतिशत को कम करके 1995 तक 10 प्रतिशत से कम पर लाना है। छठी योजना के दौरान की गई उपलब्धियों के बावजूद इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में विभिन्न सरकारी और गैर-सरकारी संगठनों द्वारा किए विभिन्न मूल्यांकनों और सर्वेक्षण अध्ययनों से बहुत-सी कमियों का पता चला है। वास्तव में इसी कारण से सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान कार्यक्रम का पुनर्गठन करने की आवश्यकता हुई। कार्यक्रम के लिए निधियों के आबंटन में चार गुना वृद्धि की गई अर्थात 16,000 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया जोकि ग्रामीण विकास पर कुल परिव्यय का 40 प्रतिशत है। कार्यक्रम का उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों के प्रतिशत को 39.5 से कम करके 1989-90 तक 25.8 पर लाने का है। कार्यक्रम के अन्तर्गत 20 मिलियन परिवारों को सहायता दिए जाने की परिकल्पना की गई है। कार्यक्रम के अन्तर्गत कार्य के मुख्य क्षेत्र हैं (1) जिला तथा खण्ड स्तर की आयोजना के रूप में अलग आयोजना, (2) प्रशासन के उच्च तथा स्थानीय स्तर पर कार्य कर रहे अधिकारियों का विकास (3) स्वास्थ्य तथा शिक्षा और (4) परिवार कल्याण आदि। कार्यक्रम की उद्देश्य पूर्ति के लिए इन क्षेत्रों में अभी बहुत कुछ किया जाना है।

इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि विभिन्न लक्षित समूहों के लिए कार्यक्रमों की मार्फत गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार की वर्तमान नीति को जारी रखना ही होगा। फिर भी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के सुचारू रूप से कार्यान्वयन के लिए अमल प्रक्रिया में और सुधार लाने, बुनियादी स्तर पर विभिन्न कार्यक्रमों के बीच सामंजस्य स्थापित करने तथा खण्ड स्तर पर प्रभावशाली आयोजना बनाने की अभी और आवश्यकता है।

योजना आयोग के परियोजना मूल्यांकन संगठन द्वारा किए गए नमूना सर्वेक्षण से पता चला है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत चुने गए 1163 परिवारों में से 29 प्रतिशत ग्राम सभा की बैठकों में चुने गए थे और शेष 71 प्रतिशत का चयन विकास खण्ड स्तर के अधिकारियों द्वारा किया गया था। इसके परिणाम स्वरूप लाभार्थियों का चयन गलत हुआ। 31 प्रतिशत मामलों में सप्लाई की गई परिसम्पत्तियां सही नहीं पायी गईं। 90 प्रतिशत नमूना सर्वेक्षण लाभार्थियों ने महसूस किया है कि उन्हें विभिन्न कार्यक्रमों से लाभ हुआ है और 90.7 प्रतिशत ने अपने रोजगार में बढ़ोतरी की है।

तथापि, वास्तविकता यह है कि गरीबी यदि बढ़ी और अधिक विकट नहीं हुई है तो भी यह कम से कम जहां की तहां है और इसकी जटिलता वर्ष प्रतिवर्ष कम होती जा रही है।

डॉ. जी.वी.के. राव समिति की रिपोर्ट, सितम्बर, 1986 की सिफारिशों को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। समिति की सिफारिशें ये हैं:– ग्रामीण विकास कायक्रमों को बनाने और उन्हें पूरा करने में लोगों और उनके प्रतिनिधियों को शामिल किया जाना चाहिए और पंचायती राज संस्थाओं को सक्रिय बनाया जाना चाहिए। इसके लिए उन्होंने इन निकायों के समय पर और तत्काल चुनाव कराने पर बल दिया है। स्वयंसेवी संगठनों के प्रयासों को बढ़ाया जाना चाहिए। नीति आयोजना और कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए बुनियादी इकाई जिला होनी चाहिए। समिति ने महाजनों के आधिपत्य पर विशेष चिन्ता व्यक्त की है जो कुल ग्रामीण ऋण के 60 प्रतिशत की पूर्ति करते हैं। उन्होंने चाहा है कि ग्रामीण ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सहकारी समितियों, वाणिज्यिक और क्षेत्रीय बैंकों को बड़े पैमाने पर भाग लेना चाहिए। समिति ने खण्ड विकास कार्यालय और इसके अधिकारियों को सुदृढ़ बनाने का सुझाव दिया है।

अब वह समय आ गया है जबकि लोगों को यह समझना चाहिए कि ग्रामीण विकास और इसी प्रकार गरीबी उन्मूलन और बेरोजगारी एक कठिन कार्य है। सरकार और इसकी एजेंसियों पर बहुत अधिक निर्भरता न तो व्यवहार्य है और न ही उचित क्योंकि हर पहलू से सरकार की अपनी सीमाएं होती हैं। इसे स्व-सहायता, पहले आत्म जागरूकता के रूप में लोगों के दिली सहयोग की जरूरत है। ऐसा केवल संस्थागत रूप से गैर सरकारी कार्यकर्त्ता जैसे स्वयंसेवी एजेंसियों और संगठनों के द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है। ग्रामीण जनता में विभिन्न कार्यक्रमों की जानकारी देने,

शेष पृष्ठ 24 पर

# भारतीय जल संसाधनों की प्रबन्ध व्यवस्था
# भू-प्रबन्धों को अधिक महत्व

बी.बी. वोहरा

लगभग तीन वर्ष पहले सिंचाई मंत्रालय का नाम बदल कर जल संसाधन मंत्रालय कर दिया गया और दस वर्षों में ऐसा पहली बार हुआ कि एक ऐसे व्यक्ति को इस मंत्रालय का सचिव नियुक्त किया गया जोकि पेशे से सिविल इंजीनियर नहीं था। इसके साथ-साथ राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् की स्थापना और इस घोषणा से कि राष्ट्रीय जल नीति तैयार करने के लिए एक नई समिति का गठन किया जाएगा, यह आशा बंधी कि अब ऐसे मामलों पर भी ध्यान दिया जाएगा जो अब तक अछूते रहे थे और नया मंत्रालय अब केवल सिंचाई समस्याओं, विशेषकर भू-तल सिंचाई से ही संबंधित नहीं रहेगा।

यद्यपि इन मामलों की ओर ध्यान देना अभी बाकी है और यहां तक कि इस मंत्रालय को भी यही कार्य सौंपे गए हैं जोकि सिंचाई मंत्रालय को सौंपे गए थे किंतु फिर भी विकास के आंतरिक महत्व को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

ऊपर वर्णित परिवर्तनों को निरर्थक नहीं कहा जा सकता वरन् इन्हें जल संसाधनों के प्रबंध में सुधार करने की सरकार की गम्भीर कोशिशों के रूप में लेना चाहिए। हाल ही में पड़े भयानक सूखे के अनुभवों को देखते हुए कहा जा सकता है कि वर्तमान स्थिति को ज्यादा समय तक यथावत चलने देना उचित नहीं है। यह बात बहुत आसानी से समझ में आ सकती है कि एक देश जिसकी आबादी लगभग 80 करोड़ है, (जोकि 2.2 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है और डर है कि वृद्धि की शून्य दर प्राप्त करने से पहले दुगुनी हो जाएगी) और गरीबी की जटिल समस्या से जूझ रहा है, का भविष्य उज्ज्वल नहीं हो सकता जब तक कि यह अपने जल संसाधनों, भूमि तथा सम्बंधित संसाधनों का उपयोग बेहतर ढंग से नहीं कर सकता।

इस समय, जल प्रबंध की वर्तमान स्थिति और उसे सुधारने के लिए उठाए जाने वाले आवश्यक कदमों की समीक्षा उपयोगी होगी। जल प्रबंध की समस्या का अध्ययन दो शीर्षकों में करना उपयुक्त होगा – पहली वे समस्याएं जिनका राज्य के वर्तमान सिंचाई और भूमिगत जल संगठनों द्वारा मुकाबला किया जा सकता है और दूसरी वे जिनका समाधान इन संगठनों की क्षमता से परे है। समीक्षा के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हो जाएगा कि बाढ़ सूखे आदि अधिकांश समस्याएं दूसरी श्रेणी में आती हैं और इनका मुकाबला भूमि प्रबंध, वनरोपण और ग्राम विकास की दूरगामी योजनाएं बनाकर ही किया जा सकता है।

पहली प्रकार की समस्याओं से, जिनका मुकाबला वर्तमान सिंचाई संगठनों द्वारा सम्भव है, यद्यपि सभी परिचित हैं लेकिन विविध ऐतिहासिक कारणों से इनका सामना करने के प्रति अरुचि भी है। बड़े बांधों और नहरों के नेटवर्क (संजाल) के निर्माण के द्वारा भूतल जल का भंडारण और वितरण, जल प्रबंध के क्षेत्र में अब तक की हमारी सर्वाधिक बड़ी उपलब्धियाँ हैं। 20 मि. है. के भू-क्षेत्र को लाभ पहुँचाने के लिए पिछले 40 वर्षों में, हमने लगभग बीस करोड़ रुपये खर्च किए हैं। यद्यपि इन उपलब्धियों पर गर्व किया जा सकता है लेकिन यह भी सच है कि हम सारे खर्चों के उचित नियोजन और जल भंडार के लाभदायक उपयोग में असफल रहे। जुलाई 1986 में हुए राज्य सिंचाई मंत्रियों के सम्मेलन में दिए गए प्रधानमंत्री के भाषण से बड़ी सिंचाई परियोजनाओं की वास्तविक स्थिति स्पष्ट हो जाती है:–

"1951 के बाद से अब तक 246 बड़ी भू-तल परियोजनाओं को शुरू किया गया है जिनमें से सिर्फ 65 ही अब तक पूरी हुई हैं। 181 अभी भी निर्माणाधीन हैं। यह अच्छी स्थिति नहीं है। इन परियोजनाओं से लोगों को कोई विशेष फायदा नहीं हुआ है। 1970 के बाद शुरू की गई परियोजनाओं में इतना पैसा लग चुका है लेकिन लोगों को वापस कुछ नहीं मिला–न तो सिंचाई की सुविधाएं, न ही पानी और न रोजमर्रा की जिन्दगी की सहूलियतें। कुछ

ठेकेदारों, कांट्रेक्टरों, मजदूरों और सार्वजनिक निर्माण विभाग को नहरें और बांध बनवाने के लिए पैसा देकर हम लोगों का वास्तविक हित नहीं कर रहे हैं। ऐसा तब होगा जब परियोजनाएं पूरी होंगी और उनके फायदे लोगों तक पहुंचेंगे।"

यह एक गम्भीर समस्या है और जो लोग भी जल प्रबंध की बेहतरी से जुड़े हुए हैं उन्हें इसे गम्भीरतापूर्वक लेना चाहिए। इस स्थिति में सुधार के लिए निम्न मुद्दों पर ध्यान देना आवश्यक है:

1. 1951 से 1985 के बीच कुल सिंचाई क्षमता 20.8 मि. है. निर्मित की गई थी जबकि प्रयुक्त की गई वास्तविक क्षमता थी 15.6 मि. है। 5.2 मि. है. के इस अंतर को भर पाना सर्वाधित जरूरी कार्य है और इस कार्य में लगभग 15,000 करोड़ रुपयों का खर्च आएगा। अतिरिक्त क्षमता निर्मित करने की अपेक्षा उपलब्ध क्षमता का ही पूर्ण प्रयोग करना ऐसे समय में आर्थिक दृष्टि से ठीक रहेगा, जब हम संसाधनों का अभाव महसूस कर रहे हैं।
2. 1951 के बाद प्रयुक्त 15.6 मि. है. भूमि का पूर्ण उपयोग करने को उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए। कहने को तो इस भूमि का उपयोग हो चुका है परन्तु वास्तविकता यह है इन भूमियों की उत्पादकता, जितना उत्पादन हो सकता था उसका एक तिहाई ही है। इसका अर्थ है कि कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रम को उससे ज्यादा प्राथमिकता मिलनी चाहिए जितनी कि मिल रही है। सातवीं योजना में बड़ी सिंचाई परियोजनाओं पर खर्च होने वाले कुल 13,227 करोड़ रुपयों में से 11,556 करोड़ रुपये (87 प्रतिशत) 4.3 मि. है. भूमि के अतिरिक्त क्षमता निर्माण में लगेंगे जबकि कमान क्षेत्र विकास कार्यक्रमों के लिए सिर्फ 1671 करोड़ रुपये रखे गए हैं। सिंचाई विभाग को नई परियोजनाओं की शुरुआत करने की अपेक्षा पुरानी परियोजनाओं की पूरी क्षमता के प्रयोग पर ज्यादा बल देना चाहिए।

जमीन की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए जहां नहरों की आवश्यकता है, वहां नहरें बनवाई जानी चाहिए। उसकी कीमत 10,000 रुपये प्रति हैक्टेयर के औसत से भी हो सकती है।

किसी भी परिस्थिति में नहरों द्वारा सिंचाई के वरदान को अभिशाप में नहीं बदलने दिया जा सकता। जल जो कि ऐसा संसाधन है जिसका नवीकरण हो सकता है, की वजह से भूमि संसाधन (जिनका नवीकरण नहीं हो सकता) नष्ट हो तो यह एक अभिशाप ही है।

3. सिंचाई परियोजनाओं से होने वाले आर्थिक नुकसानों को समाप्त करने के तरीके खोजे जाने चाहिए। लगातार बढ़ते हुए इन नुकसानों की सीमा 800 करोड़ रुपये प्रति वर्ष तक पहुंच चुकी है।
4. हमें बेशकीमती जल भंडारों को, जिनकी प्रतिस्थापना नहीं की जा सकती, समय से पूर्व ही समाप्त हो जाने के खतरे से बचाना होगा। इस कार्य के लिए जल भंडार वाले क्षेत्रों में वनरोपण और भूमि संरक्षण की आवश्यकता है जो सिंचाई विभाग के कार्यक्षेत्र में नहीं आता।

तथापि, सिंचाई विभाग में जो सबसे बड़े सुधार की आवश्यकता है वह है भूमिगत जल के प्रति दृष्टिकोण बदलने की। भूमिगत जल, जो कि सिंचाई का महत्वपूर्ण साधन है, को अभी भी गैर महत्वपूर्ण साधन मानते हैं। इसका एक ऐतिहासिक कारण है। सिंचाई की बड़ी और मझौली परियोजनाएं राज्य के सिंचाई विभागों के अंतर्गत आती है और इनके साथ बड़े सार्वजनिक कार्यों के साथ जुड़ा रहने वाला सम्मान और ग्लैमर भी जुड़ गया है। इसके विपरीत भूमिगत जल सिंचाई के क्षेत्र में काफी देर से आया और सार्वजनिक निर्माण विभाग की दृष्टि में इसका कोई आकर्षण भी नहीं है क्योंकि भूमिगत जल के भंडारण, परिवहन और वितरण के लिए इसे राज्य सरकारों से कोई राशि नहीं मिलती। 1970 में जब केंद्रीय भूमिगत जल बोर्ड बना था तो इसे कृषि मंत्रालय के अधीन किया गया था लेकिन 1980 में इसे सिंचाई मंत्रालय के अधीन कर दिया गया।

हाल के वर्षों में भूमिगत जल बहुत तेजी से निजी क्षेत्र में सिंचाई के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरा है। भूतल जल का विकास सिंचाई विभाग की कृपा दृष्टि पर निर्भर है और मात्र उन्हीं क्षेत्रों को उपलब्ध है जो सौभाग्यवश कमान क्षेत्र की परियोजनाओं में शामिल हैं। इसके विपरीत भूमिगत जल देश के अधिकांश हिस्सों में काफी कम गहराई में ही उपलब्ध है और किसानों द्वारा आसानी से इसका

उपयोग किया जा सकता है। जहाँ आवश्यकता होती है वहां कम अवधि के ऋण भी किसानों को इस कार्य के लिए दिए जाते हैं। ट्यूबवेलों को लगाने का काम कुछ ही दिनों में पूरा हो जाता है और एक ही मौसम में इससे किसानों को रकम वापस होने लगती है, इस वजह से यह एक आकर्षक पूंजीनिवेश बन गया है। सबसे बड़ी बात यह है कि भूमिगत जल सिंचाई का ऐसा साधन है जो पूरी तरह किसान के नियंत्रण में है और फसल की आवश्यकतानुसार जब जितनी सिंचाई की आवश्यकता होती है, किसान कर सकता है। यही वजह है कि भूमिगत जल से सिंचाई नहरों की अपेक्षा दुगने महत्व की है।

सरकार की बुद्धिमत्तापूर्ण नीतियों के कारण आज देश में एक करोड़ से भी ज्यादा विद्युतचालित या डीज़ल चालित पम्पसेट हैं। छठी योजना के अंत तक, भूमिगत जल द्वारा सिंचित क्षेत्र 2.61 करोड़ हैक्टेयर था जबकि बड़ी और मझौली परियोजनाओं द्वारा सिंचित क्षेत्र 2.53 करोड़ हैक्टेयर। अतः शक की गुंजाइश नहीं है कि भूमिगत जल अब सिंचाई एक महत्वपूर्ण और सर्वाधिक उत्पादक स्रोत बन चुका है।

बड़ी परियोजनाओं में बड़ी मात्रा में पूंजीनिवेश की जरूरत होती है, इनके पूरा होने में वर्षों और कभी-कभी दशकों का समय लग जाता है और जलप्लावन तथा वितरण के लिए बहुत बड़े भू-क्षेत्र की भी आवश्यकता होती है। भंडारण और परिवहन के समय वाष्पन के कारण बड़ी परियोजनाओं में पानी का भी भारी नुकसान होता है। औसतन 50 प्रतिशत से भी कम जल की मात्रा किसान के खेत तक पहुंच पाती है। ऐसी परियोजनाओं में जलाक्रांति की भी गंभीर समस्याएं उठ खड़ी होती हैं, खास तौर से उन क्षेत्रों में जहां जल निकासी का समुचित प्रबंध न हो। भ्रष्ट और अक्षम नौकरशाह के पूरे तंत्र ने भी इन परियोजनाओं की सफलता में बाधा पहुंचाई है।

भूतल सिंचाई परियोजनाओं पर कार्य करते समय न तो पूरी तरह सर्वेक्षण और छानबीन की जाती है और न ही निश्चित समय में पूरा करने के लिए पर्याप्त मात्रा में पूंजीनिवेश जुटाए जाते हैं। इस वजह से, बड़े और मध्यम मार्गों द्वारा प्रति हैक्टेयर भूमि पर सिंचाई क्षमता निर्मित करने की कीमत अब बढ़कर 30,000 रुपये हो चुकी है जो प्रथम योजना के समय मात्र 1200 रुपये थी। तथापि, यदि कमान क्षेत्र विकास और जल निकासी की कीमतों को भी ध्यान में रखा जाए तो प्रति हैक्टेयर सिंचाई क्षमता निर्मित करने की कीमत औसतन 40,000 रुपये से भी ज्यादा हो जाएगी। इससे स्पष्ट है कि भविष्य में इस देश में भूमिगत जल से सिंचाई का महत्व बढ़ता ही जाएगा।

यहां यह बता देना आवश्यक है कि कुछ कारणों से (जो इतने स्पष्ट हैं कि उनका उल्लेख आवश्यक नहीं है) "बड़े बांधों का समर्थन करने वाला गुट अभी तक प्रभावशाली है। यह इसी तथ्य से स्पष्ट है कि सारे देश में पर्यावरणविदों के व्यापक विरोध के बावजूद यह गुट 25,000 करोड़ रुपये लागत वाली 25 वर्षीय नर्मदा परियोजना को स्वीकृति दिलाने में सफल हो गया। 'द स्टेट्समैन, नामक एक अखबार के एक सम्पादकीय के अनुसार इस परियोजना की लागत, इसके पूरा होते-होते लगभग 80,000 करोड़ रुपये हो जाएगी और इस परियोजना के क्षेत्र में आने वाली 2.0 मि. है. भूमि को सिंचित करने की कुल कीमत अविश्वसनीय रूप से 4,00,000 रुपये प्रति हैक्टेयर होगी।

भूमिगत जल संसाधन प्रकृति प्रदत्त देन है— यह मानकर उन्हें यथावत छोड़ नहीं देना चाहिए बल्कि उनके योजनाबद्ध विकास पर ध्यान देना चाहिए। यह संसाधन कितनी उपेक्षा का शिकार हैं, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि सातवीं योजना के दस्तावेज में इस विषय से सम्बंधित अलग से न तो कोई खण्ड है और न ही इस संसाधन के उपयोग में जो समस्याएं आती हैं, उन पर कोई चर्चा। यही उचित समय है कि देश के कई हिस्सों में जल-स्तर में भारी गिरावट आई है। इसकी वजह एक तरफ तो अधिक पम्पिंग है तथा दूसरी तरफ वनों के भारी मात्रा में कटने के कारण संपूर्ति की दरों में कमी तथा 'वाटर शेड्स' का लगातार वनस्पतिविहीन होते जाना। कुछ क्षेत्रों, जैसे सौराष्ट्र के तटीय क्षेत्र में अत्यधिक पम्पिंग की वजह से उर्वर भूमि बंजर हो गई है तथा मीठे पानी के जलभृतों में समुद्री खारा पानी आ गया है।

यह आवश्यक है कि ऐसे खतरों का पूर्वानुमान किया जाए और प्रभावित क्षेत्रों को बचाया जाए ताकि भूमिगत जल से सिंचाई का विकास कहीं अपना ही दुश्मन न बन बैठे। कुछ सुझाव नीचे दिए जा रहे हैं जिन पर विचार किया जा सकता है:—

(क) भूमिगत जल संगठनों को उपकरणों से लैस करना चाहिए और इतना क्षमतावान बनाना चाहिए कि एक्विफर्स की प्रकृति और उनकी रीचार्ज क्षमताओं के बारे में वैज्ञानिक शोध किया जा सके।

(ख) भूमिगत जल संगठनों को इस प्रकार सक्षम होना चाहिए कि वे किसानों को तकनीकी सलाह दे सकें कि उन्हें किस प्रकार के ट्यूबवेल और पम्पिंग सेट अपनी जमीन पर लगाने चाहिए ताकि ऊर्जा और अन्य पदार्थ नष्ट न हो सकें।

(ग) राज्य सरकारों को यह अधिकार होना चाहिए कि वे कृषि उत्पादन और कृषक समुदाय के व्यापकतर हितों को ध्यान में रखते हुए पम्पिंग पर रोक लगा सकें।

(घ) राज्य सरकारों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि जिन पम्पिंग सेटों को लगाया है, बिजली या डीजल के अभाव से उनकी कार्यक्षमता पर असर न पड़े।

(च) राज्य सरकारों को भूमि की चकबंदी के लिए प्रणालीबद्ध कार्यक्रम अपनाने चाहिए, क्योंकि यह भूमिगत जल विकास को प्रोत्साहन देने के लिए एक सुनिश्चित तरीका है।

(छ) भूमिगत जल प्रबंध के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि इस संसाधन की संपूर्ति को सम्भव सीमा तक बढ़ाया जाए। तथापि, यह एक ऐसा कार्य है जो सिंचाई संगठनों के दायरे से बाहर है और वाटरशेड प्रबंध तथा भूमि और जल संरक्षरण के क्षेत्र में आता है।

अब हम जल प्रबंध के क्षेत्र में दो कार्यों की चर्चा पर लौटें:—

इन दोनों को सिंचाई विभाग के अधिकार क्षेत्र से बाहर माना गया है। पहले कार्य के लिए आवश्यक है कि कृत्रिम जलाशयों के बाह्य क्षेत्रों में भूमिकटाव पर नियंत्रण किया जाए ताकि जल संरक्षण के लिए इतनी लागत से जो भंडारण किया गया है कि वह रेत के ढेर में न बदल जाए और सिंचाई परियोजनाओं की समयावधि कम न होने पाए। दूसरे कार्य के लिए आवश्यक है कि जल के अधिक मात्रा में व्यर्थ बह जाने को रोका जाए।

ये दोनों कार्य काफी हद तक समान हैं क्योंकि कृत्रिम जलाशयों में भूमि कटाव ठीक उन्हीं कारणों से होता है जिन कारणों से वर्षा का जल अधिक मात्रा में व्यर्थ बह जाता है।

इनका संबंध मुख्यत: वनों के कटाव और अन्य गैर कृषि भूमियों के वनस्पतिविहीन होने से है जिसकी वजह से मिट्टी की सबसे ऊपरी परत नंगी हो जाती है और उसे भारी प्रसीपिटेशन का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार मिट्टी की पकड़ ढीली हो जाती है और पानी का बहाव उसे आसानी से बहा ले जाता है। इनका संबंध ढलुआ भूमि पर अदूरदर्शितापूर्ण खेती से भी है जिन पर भूमि व जल संरक्षण के लिए 'कंटूर टेरेसिंग' व बांध बनाने जैसे तरीके नहीं अपनाए जाते। इन दोनों समस्याओं का समाधान एक ही है— गैर-कृषि भूमि पर पेड़ों व घास का उगाया जाना जिससे उस भूमि को सुरक्षा मिले तथा ऐसी कृषि योग्य भूमि का संरक्षण हो जिसका क्षरण हो रहा है।

वनरोपण और बेहतर भूमि प्रबंध पर राष्ट्रव्यापी ढंग से जोर दिया जाना चाहिए ताकि पानी के व्यर्थ बह जाने और भू-क्षरण के नुकसान को कम किया जा सके। ऐसा करने से सूखे और बाढ़ से हमारी अर्थव्यवस्था पर अक्सर पड़ने वाले आघात को भी कम किया जा सकता है।

पानी के व्यर्थ बह जाने और भू-क्षरण पर नियंत्रण से बाढ़-नियंत्रण भी होता है क्योंकि ऐसा करने से नदी में पहुंचने वाली पानी की मात्रा में, तथा सिल्ट की मात्रा में भी कमी होती है। पानी में भारी मात्रा में सिल्ट की मौजूदगी की वजह से ही नदियों के तलछट में जमाव होता है और पानी बहाकर ले जाने की उनकी क्षमता में कमी आती है।

ऐसी कृषि भूमियों, जहाँ वर्षा उचित मात्रा में होती हो, की उत्पादकता को सुरक्षित रखने के लिए पानी के व्यर्थ बहाव और भू-क्षरण पर नियंत्रण आवश्यक होता है। मिट्टी की ऊपरी परत सर्वाधिक उर्वर होती है और इसका नवीकरण भी नहीं हो सकता। प्रकृति को इस परत के निर्माण में सैकड़ों वर्ष लगते हैं। ऐसी भूमियों में नमी बने रहने के लिए पानी का रोकना भी महत्वपूर्ण होता है।

यहाँ यह समझ लेना आवश्यक होगा कि बाढ़ या सूखे की रोकथाम जल संसाधन मंत्रालय की जिम्मेदारियों में नहीं आता। यह आश्चर्यजनक है क्योंकि आज बाढ़ व सूखा जल प्रबंध के समक्ष आने वाली प्रमुख समस्याओं में हैं। बाढ़ नियंत्रण जल संसाधन मंत्रालय की गतिविधियों में आता है

पर मात्र कुछ विशिष्ट शहरी इलाकों में, बांध और डाइक्स के निर्माण द्वारा। लेकिन सिर्फ इन इंजीनियरिंग निर्माण कार्यों को 'बाढ़ नियंत्रण' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अपितु इसके लिए 'बाढ़ संरक्षण' ज्यादा उपयुक्त होगा।

अब केन्द्र के पास बाढ़ या सूखे की समस्या का गम्भीरतापूर्वक सामना करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। स्थिति की गम्भीरता का आकलन, बाढ़ या सूखा राहत के लिए राज्यों द्वारा मांगी जा रही आर्थिक सहायता राशि देखकर किया जा सकता है। 1985-86 में यह मांग 8000 करोड़ रुपये थी। अत्यधिक पानी के व्यर्थ बहाव और भूक्षरण से होनेवाली अर्थव्यवस्था की हानि का आकलन अभी तक नहीं किया गया है। यदि अंदाज लगाया जाए तो यह कई हजार करोड़ रुपयों तक आएगा। इसमें बाढ़ व सूखे से होने वाली प्रत्यक्ष हानियों के अलावा भूमि-कटाव, सिल्टेशन तथा भूमि के वनस्पतिहीन होने वाले नुकसान भी शामिल हैं। यह महसूस किया जाना चाहिए कि इन्हीं अदृश्य हानियों की बदौलत आज हमारा देश गरीबी के अभिशाप में जकड़ा हुआ है।

यह बात बड़ी अजीब है कि केन्द्र राज्यों को भारी मात्रा में बाढ़ या सूखे के लिए राहत राशि देता है और सारे राष्ट्र के अर्थतंत्र की जिम्मेदारी भी केंद्र की ही है फिर भी केंद्र ने अभी तक देश की सर्वाधिक गम्भीर समस्या के प्रति कोई निश्चित रणनीति नहीं तैयार की है। पानी के व्यर्थ बह जाने और भूक्षरण को नियंत्रित करने के लिए भी कोई राष्ट्रीय कार्यक्रम नहीं है और न ही किसी संगठन को इसकी जिम्मेदारी सौंपी गई है।

अत्यधिक पानी के व्यर्थ बह जाने और भूक्षरण की समस्या से कैसे निबटा जाए? इसके तकनीकी उत्तर सभी जानते हैं—इसके लिए आई.सी.ए.आर. और अन्य बाहरी संगठन धन्यवाद के पात्र हैं। सभी गैर-कृषि भूमियों को मनुष्यों और पशुओं द्वारा हर प्रकार के जैवीय हस्तक्षेपों से बचाया जाना चाहिए ताकि उन पर घास और पेड़ों का सुरक्षा कवच विकसित हो सके। इस कार्य के लिए जानवरों द्वारा घास चरने पर नियंत्रण करना होगा तथा यह ग्रामीण समुदाय के सहयोग से ही किया जा सकता है। बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण तथा जल और मिट्टी के संरक्षण के लिए कंटूर ट्रेंचिंग और बांध बनाना जैसे सरल उपायों का प्रयोग करना चाहिए। वर्षा द्वारा सिंचित कृषि योग्य भूमि को क्षरण और व्यर्थ के जल बहाव से बचाने की कोशिश करनी चाहिए।

जल के सभी स्थानीय स्रोतों को सुरक्षित रखने के लिए छोटे-छोटे भंडार खोलने चाहिए। हमारे देश में अतिरिक्त श्रम की कमी नहीं है जिसका उपयोग इन उपलब्धियों को प्राप्त करने में किया जा सकता है जैसा कि माओ ने चीन में किया था। ऐसी उपलब्धियां तभी प्राप्त की जा सकती हैं जब लोगों को अपना अतिरिक्त समय व श्रम ऐसे कामों में देने के लिए प्रेरित किया जा सके व जिसे वे सारे समुदाय की भलाई के लिए समझें। हमारे ग्रामीण समुदाय आम तौर पर सामंती हैं और टुकड़ों में बंटे हुए हैं। इनमें माफिया और अराजक तत्वों का खासा प्रभाव है, इनमें एक तरफ तो शासन के प्रति अविश्वास भर गया है और दूसरी तरफ ये अपनी बेहतरी के लिए संयुक्त रूप से कदम उठाने में अक्षम हो गए हैं। इसके अलावा, इनके पास स्वायत्तता नहीं है, आर्थिक स्रोत नहीं है और प्रजातांत्रिक स्वशासन के लिए संस्थाएं नहीं है।

इन मृतगामी स्थितियों को बदलना चाहिए ताकि अत्मनिर्भर समुदायों का विकास हो सके और वे संसाधनों का प्रबंध स्वयं कर सकें। यह एक बहुत बड़ा काम है—जिसके लिए ग्रामीण क्षेत्रों में महत्वपूर्ण राजनैतिक, प्रशासनिक और सामाजिक परिवर्तनों की आवश्यकता है।

इस समय जबकि जिला प्रशासन की दशा बहुत दयनीय है और कई राज्यों में जिला प्रमुखों को एक साल से ज्यादा उनके पद पर नहीं रहने दिया जाता—ऐसे समय में इतने नए और क्रांतिकारी परिवर्तन सफल होंगे, इसकी सम्भावना कम ही है। लेकिन यदि हम अपने परितंत्र के संतुलन को बचाना चाहते हैं तो हमें यह करना ही पड़ेगा।

आज की जो स्थिति है वह जिला प्रशासन के ढांचे में सम्पूर्ण परिवर्तन मांगती है। जिलों में ऐसे अधिकारियों को क्यों नहीं रखा जाता जिनके पास 15-20 साल का अनुभव है? जिला कलेक्टरों का तबादला क्यों इतनी जल्दी हो जाता है? उन्हें कम से कम 5 साल तक उस पद पर रखना चाहिए। क्या जिलों को एक बार पुनः प्रशासन की महत्वपूर्ण तथा गतिशील इकाई नहीं बनाया जा सकता? प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण के जरिए जिला अधिकारियों को अधिकार मिलने चाहिए ताकि वे संसाधनों के प्रबंध के काम को सफलतापूर्वक कर सकें।

लेकिन केन्द्र में ऐसी कौन सी संस्था है जो इस महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों को क्रियान्वित करेगी? वन विभाग इसकी जिम्मेदारी लेगा नहीं जो 1985 में एन.डब्ल्यू.डी.बी. के बनने के बाद दो हिस्सों में टूट चुका है। वैसे भी वन विभाग का 85 मि. है. अनुपयोगी कृषि भूमि पर कोई अधिकार नहीं है, 56मि. है. वनस्पतिविहीन गैर-कृषि भूमि पर भी उसका कोई अधिकार नहीं है। वन विभाग मात्र 67 मि. है. वन भूमि की देखरेख करता है। कृषि विभाग जिसके पास भूमि और जल संरक्षण प्रभाग भी है तथा ग्रामीण विकास विभाग जिसे वन, जल तथा भूमि संरक्षण के लिए कुछ सहायता भी मिलती है, भी इस कार्य को नहीं कर सकते। जल संसाधन मंत्रालय भी इस कार्य को हाथ में नहीं ले सकता क्योंकि इसके पास अपनी समस्याएं हैं जो भूमि प्रबंध से सम्बद्ध नहीं है।

अगर हमें वास्तव में इन समस्याओं का समाधान करना है तो तत्काल एक नया मंत्रालय—'प्राकृतिक संसाधन मंत्रालय' खोलना पड़ेगा जिससे भूमि, जल, वनस्पति आदि से जुड़ी सारी एजेंसियाँ, कार्यक्रम आदि एक प्रशासनिक ढांचे में आ सकें।

इस नए मंत्रालय का सर्वप्रमुख काम होगा—अपने समस्त आर्थिक संसाधनों को नई प्राथमिकताओं को ध्यान में रखकर वितरित करना तथा जल प्रबंध और भूमि प्रबंध के असंतुलन को दूर करना। हमारी नीतियों की अदूरदर्शिता इसी तथ्य से स्पष्ट है कि छठी योजना के अंत तक मात्र 2,723 करोड़ रुपये वन, भूमि तथा जल संरक्षण कार्यक्रमों को दिए गए, जिनका उपयोग 90 मि. है. वनस्पतिविहीन गैर-कृषि भूमि और 85 मि. है. कटाव वाले कृषि भूमि क्षेत्र के लिए होना था। तथापि, उसी समय बड़ी सिंचाई परियोजनाओं में केवल 20 मि. है. क्षेत्र के लिए 15,206 करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस प्रकार के पक्षपात को समाप्त किया जाना चाहिए।

सरकार के अलावा इस कार्य में लोगों को तथा स्थानीय समुदायों को भी दिलचस्पी लेनी पड़ेगी क्योंकि इससे उनका भी भविष्य जुड़ा हुआ है। राजनैतिक दल और स्वैच्छिक संगठन लोगों को शिक्षित करने में अपनी भूमिका निभा सकते हैं। यदि लोग शक्ति के साथ उत्साहपूर्वक इस काम में लगेंगे तो हम इस दुखद स्थिति से उभर सकते हैं।

**अनुवाद : रक्षा देवी**

---

पृष्ठ 18 का शेष

आय सृजित करने वाली विभिन्न परियोजनाएं शुरू करने, ट्राइसेम आदि कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम की देखरेख करने और उपलब्ध स्थानीय संसाधनों और कार्य-कुशलता के आधार पर परियोजनाएं बनाने और उन्हें अमल में लाने में स्वयंसेवी एजेंसियां महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

कई विकास और रोजगार कार्यक्रमों की सफलता की दर में गिरावट अथवा इन कार्यक्रमों की असफलता का कारण एक प्रभावशाली सुपुर्दगी प्रणाली का अभाव है। वास्तव में यह कमी हमारे ग्रामीण विकास के सभी कार्यक्रमों और नीतियों में पिछले 40 वर्षों से चली आ रही है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यही ग्रामीण विकास की नीतियों की अभी तक समग्र असफलता के लिए दोषी है। इस कमी को दूर करने के लिए सुपुर्दगी प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन करने और इसे ठोस बनाये जाने की जरूरत है।

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का मुख्य कारण यह है कि ग्रामीण विकास में लोगों का अपना कोई स्थान नहीं है। प्रतिनिधित्व निकायों का स्थान प्रशासन के "कोलोनियल पैटर्न" ने ले लिया है। समुदाय जो एक समय ग्रामीण विकास नीति का केन्द्र बिन्दु था अब बाह्य परिसर बनकर रह गया है। एक अति विकसित अफसरशाही का स्थान चुनी हुई पंचायतों ने ले लिया है। चुनी हुई पंचायतों की तुलना में सामाजिक परिवर्तन के एक बेहतर एजेंट के रूप में अफसरशाही ने विश्वास खो दिया गया है।

बुनियादी स्तर पर सुपुर्दगी प्रबंधों के विकास की समीक्षाओं से पता चलता है कि विकास की मात्रा और गुणवत्ता गति और स्वरूप दोनों में संतोषजनक नहीं है। प्राकृतिक संसाधनों और मानवीय विकास के राष्ट्रीय उद्देश्यों में उनकी संभाव्यता के अनुरूप प्रगति नहीं हुई है। आज भी मूल समस्या यही है कि स्थानीय क्षेत्रों तक कैसे पहुंचा जाए और सामाजिक आर्थिक उत्थान के लिए विभिन्न विकास कार्यक्रमों में स्थानीय लोगों और स्थानीय संसाधनों का इस्तेमाल कैसे किया जाए।

इस संदर्भ में हमें महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू की उस विचारधारा को भी ध्यान में रखना होगा कि 'लोगों पर अधिकार' की बजाय 'लोगों का अधिकार' देश के लिए अधिक लाभप्रद है।

**अनुवादः श्रीमती किरण गुप्ता**

# भारतीय अर्थव्यवस्था में भूमि सुधार आंदोलन

रजनी शर्मा
डॉ मन्सूर अली

भूमि सुधार से हमारा तात्पर्य मानव और भूमि के सम्बन्धों का पुनर्गठन करने से है। जब परम्परागत व्यवस्था को परिवर्तित करते हुये मानव और भूमि के सम्बन्ध में सुधार किया जा सकता है, तब ऐसे कार्यक्रमों को भूमि सुधार कार्यक्रम की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट शब्दों में यह एक सामाजिक परिवर्तन है जो कृषि से सम्बन्धित लोगों की भलाई के लिये किया जाता है। इसके अन्तर्गत वे सब सुधार आते हैं जो भूमि व्यवस्था, भूमि के स्वामित्व अधिकार, दायित्व, जोतों के आकार, जोतों की सुरक्षा, लगान निर्धारण व वसूली की उचित व्यवस्था, चकबन्दी, कृषि का पुनर्गठन आदि से सम्बन्धित होते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय तीन प्रणालियां भारत में भी प्रचलित थीं। जमींदारी प्रथा, महालवारी प्रथा, रयैतवारी प्रथा। जमींदारी प्रथा के अन्तर्गत भूमि का लगान जमींदार किसानों से वसूल करते थे। महालवारी प्रथा के अन्तर्गत एक समूह बना लिया जाता था और उसका मुखिया किसानों से लगान वसूल करता था। जबकि रयैतवारी प्रणाली के अन्तर्गत किसान प्रत्यक्ष रूप से राज्य को लगान अदा करता था।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में भूमि सुधार कार्यक्रम निम्नलिखित भागों में बांटा गया:

### जमींदारी उन्मूलन

अंग्रेजी प्रशासन से उत्तराधिकार में प्राप्त परम्परागत खेती व्यवस्था के अधीन सरकार और किसान के बीच जो पाये जाते थे उन्हें जमींदार या भागीदार कहते हैं। ये जमींदार एक ओर प्रशासन का प्रतिनिधित्व करते थे और दूसरी ओर काश्तकार के शोषण का प्रतीक माने जाते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने भूमि सुधार कार्यक्रम के उपरान्त सर्वप्रथम इन बिचौलियों को समाप्त करने का निश्चय किया। 1954 तक सभी राज्यों में आवश्यक कानून पास कर दिये और जमींदारी व्यवस्था की समाप्ति के समय ही लगभग 2 करोड़ किसानों का सरकार के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया। सरकार ने इन जमींदारों को मुआवजा देने का निश्चय किया। काश्तकारों को यह राशि नकद देने का निश्चय किया गया। बड़े जमींदारों को बौण्ड्स दिये गये। उनसे यह वायदा किया गया कि 20 से 40 किश्तों के बीच उन्हें भुगतान कर दिया जायेगा। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि मुआवजा की दरें भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न थीं। मुआवजे की कुल रकम 670 करोड़ थीं। उनमें से अधिकांश भाग का भुगतान किया जा चुका है।

### काश्तकारी सुधार

भूमि सुधार का यह पहलू उन किसानों से सम्बन्धित है जो पट्टे पर या ठेके पर जमीन लेकर खेती करते हैं। यह भूमि के स्वामी नहीं होते, उन्हें काश्त के लिये दी गयी जमीन का लगान देना पड़ता है। काश्तकारी सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में प्रयास हुये हैं।

1- लगान का नियमन, 2- भू-धारण की रक्षा- काश्तकारी में सुरक्षा और 3- काश्तकारों को भूमिधर बनाने की व्यवस्था।

### जोतों की सीमाबन्दी

अधिकांश राज्यों में जोतों की सीमाबंदी कानून 1961 में पारित किया गया। इसके अन्तर्गत दो बातों का अध्ययन किया गया। (1) जोतों की उच्चतम सीमाओं का निर्धारण करना (2) अतिरिक्त भूमियों वाले स्वामियों से भूमि लेकर छोटे व भूमिहीन किसानों में बांटा जाना।

विभिन्न राज्यों में उच्चतम सीमाओं का निर्धारण अलग-अलग स्तर पर किया गया है परन्तु लगभग हर राज्य में सीमा निर्धारण करते हुये भूमि की उर्वरता शक्ति, सिंचाई की सुविधाओं व फसलों के आधार को ध्यान में रखा गया है। सीमा निर्धारण कानून सभी प्रकार की भूमियों पर लागू नहीं होता। विभिन्न राज्यों में अलग-अलग प्रकार के कानून बने हैं। कहीं अधिक प्रकार की भूमियों को छूट दी गयी है और कहीं कम। उदाहरणार्थ उ.प्र. में 20 प्रकार की भूमियों

की सीमाबंदी के कानून को छूट दी गयी। जिसमें लगान, पंजीकृत फार्म, धर्मार्थ, संस्थाओं की भूमि, पशुपालन फार्म, चीनी मिलों के गन्ने के फार्म आदि की भूमियां सम्मिलित थीं।

1977 तक 41.54 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गयी जिसमें 22.02 लाख एकड़ भूमि अधिकार में ली गयी और 13.58 लाख एकड़ भूमि 9.28 लाख भूमिहीनों में वितरित की गयी। 1981 तक 40 लाख एकड़ भूमि अतिरिक्त घोषित की गयी जिसमें 26.86 लाख एकड़ भूमि अधिकार में ली गयी, 18.46 लाख एकड़ भूमि वितरित की गयी।

**चकबन्दी**

चकबन्दी का कार्य पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में लगभग पूरा हो चुका है। अन्य राज्यों में भी चकबन्दी कार्य सराहनीय है। छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 53 मिलियत हैक्टेयर भूमि की चकबन्दी हो चुकी है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में यह लक्ष्य रखा गया है कि देश के लगभग चौथाई भाग पर चकबन्दी का कार्य पूर्ण हो जायेगा।

यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भूमि सुधार कार्यक्रम को बहुत ही जोश के वातावरण में लागू किया गया था, परन्तु उनमें अनेक कमियों के कारण कार्यान्वयन बहुत ही असन्तोषजनक रहा है।

**दोष**

1. भूमि सुधार कार्यों का दायित्व राज्य सरकारों पर होने से भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों ने भी भिन्न-भिन्न अधिनियम पारित किये हैं, उनमें समता का अभाव है।
2. विभिन्न अधिनियमों में एकरूपता का अभाव तो है ही साथ ही साथ उन अधिनियमों में कानूनी कमियाँ भी रही हैं जिनका निहित स्वार्थियों ने छिद्रन्वेशन कर वसूली दुर्बलताओं का लाभ उठाया है।
3. सीमा निर्धारण को लागू करने में अत्यधिक विलम्ब हुआ है जिसके कारण बड़े-बड़े भू-स्वामियों का हस्तान्तरण अपने निकटतम सम्बन्धी आदि को करके कानून के चंगुल से बच गये हैं।
4. अधिकांश कृषक अशिक्षित हैं। वे न तो कानून को ही समझते हैं और न ही शोषण से बचने के लिये कानून की शरण लेते हैं- जैसे ऊँची लगान व बे-दखली के विरुद्ध कानूनी शरण लेने से काश्तकार कतराते हैं।

**भूमि-सुधार की सफलता हेतु सुझाव**

1. भूमि सुधार अधिनियमों की कानूनी कमियों को दूर कर उन्हें प्रभावी रूप से लागू किया जाये ताकि बचने की सम्भावनायें सीमित हो जायें।
2. प्रशासनिक कुशलता बढ़ायी जाये व भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखा जाये ताकि भूमि सुधारों की मुस्तैदी से लागू करना सम्भव हो सके।
3. भूमि का स्वामित्व उस कृषक को ही सौंपना चाहिये, जो वास्तव में स्वयं कृषि करता हो।
4. भूमिहीनों को पड़त भूमि का आबंटन करने में शीघ्रता बरती जानी परमावश्यक है,
5. सीमाबन्दी से प्राप्त भूमि शीघ्र भूमिहीनों को आबंटित हो जानी चाहिये।
6. धर्मार्थ हेतु जो भूमि की छूट दी गयी है उसका उपयोग सही मायने में धर्म के लिये ही होना चाहिये। सरकार को दृढ़ता से इस कानून में संशोधन करना चाहिये।

चकबन्दी में प्रायः बड़े किसानों को लाभ हुआ है क्योंकि इन्होंने चकबन्दी कार्य को प्रभावित करके अच्छी तथा उपजाऊ भूमि प्राप्त कर ली है। छोटे किसानों को अनुपजाऊ भूमि ही मिलती है। अतः स्पष्ट है कि यहां किसान इतना कमजोर होता है कि न वह अपील कर सकता है और मुकदमा ही लड़ सकता है।

यदि सरकार अतिरिक्त भूमि का आबंटन व कार्यान्वयन भली प्रकार से नहीं कर सकती है और छोटे किसानों की दशा नहीं सुधार सकती है तो हमें एक और कदम उठाना चाहिये वह यह कि सारी अतिरिक्त भूमि को एकत्रित करके सरकार की सहायता से बड़े पैमाने में सहकारिता व सामूहिक खेती की जाये जो न केवल बड़े स्तर पर आधुनिक रूप से कृषि की जायेगी बल्कि छोटे किसानों को उस पर रोजगार दिया जायेगा। आखिर छोटा किसान चाहता ही क्या है? पेट भर रोटी व मूल आवश्कताओं की पूर्ति, यही उसका ध्येय है और जैसे भी हो यह तो उसको मिलना ही चाहिये।

अन्त में हम यही कह सकते हैं कि केवल कानून द्वारा व्यक्त भावनाओं से भूमि सुधार के उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकते इसके लिये जनता व सरकार दोनों को दृढ़ संकल्प लेकर कार्य करने की आवश्यकता है।

**मानविकी विभाग रूड़की विश्वविद्यालय रूड़की**

# राजस्थान में डेयरी उद्योग: एक मूल्यांकन

डॉ. जवाना राम

राजस्थान के निवासियों के जीवन में पशुपालन एवं दुग्ध उत्पादन का महत्वपूर्ण स्थान है। वर्तमान में राज्य में 1.05 करोड़ गाय और भैंस हैं जिनसे लगभग 35 लाख टन दूध प्रतिवर्ष उत्पादित होता है। एक अनुमान के अनुसार राज्य में कुल उत्पादित दुग्ध का एक तिहाई भाग दैनिक आवश्यकता से अधिक है जो कम आय वाले दुग्ध-पदार्थों जैसे घी, मावा आदि में अनार्थिक विधियों द्वारा परिवर्तित किया जाता है। अत: दुग्ध का इस प्रकार अलाभप्रद विधियों से दुग्ध-पदार्थों में परिवर्तन इनको विशेष लाभ नहीं देता है। इन्हीं तथ्यों को दृष्टि में रखकर दुग्ध उत्पादनवर्द्धन एवं दुग्ध की उचित विपणन व्यवस्था हेतु राज्य सरकार ने चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत में पशु एवं डेयरी विकास का एक महत्वपूर्ण एवं बहुद्देशीय कार्यक्रम प्रारम्भ किया। इस कार्यक्रम को नाम दिया गया "श्वेत क्रान्ति"। इस क्रान्ति के योजनाकारों ने सर्वप्रथम यह नीतिगत निर्णय लिया कि जिन लोगों का यह कार्यक्रम है, वे ही इसका संचालन करें। इसलिये राज्य में डेयरी उद्योग की विकास योजनाओं को सहकारी क्षेत्र में शुरू किया गया है।

**प्रबन्ध व्यवस्था**

डेयरी विकास योजना को आम पशुपालक तक पहुंचाने तथा उसका सीधा सहयोग प्राप्त करने के उद्देश्य से ग्राम स्तर पर दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियां गठित कर उन्हें जिला स्तर पर दुग्ध उत्पादक संघों से एवं इन संघों को राज्य स्तर पर सहकारी फैडरेशन से सम्बद्ध किया गया है।

ग्राम दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों का प्रमुख कार्य दुग्ध उत्पादकों से दुग्ध संकलन, संकलित दुग्ध का जिला संघ को विपणन एवं दुग्ध उत्पादन वर्द्धन हेतु दुग्ध उत्पादकों को तकनीकी जानकारियों की सुविधा प्रदान करना है। वर्ष 1972-73 में जब डेयरी विकास कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया था, दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों की संख्या मात्र 61 एवं उनकी सदस्य संख्या 1208 थी जो वर्ष 1986-87 के अन्त तक कई गुणा बढ़कर क्रमश: 4369 एवं 2.65 लाख हो गयी।

जिला स्तर पर दुग्ध उत्पादक संघों का मुख्य कार्य समितियों के माध्यम से दुग्ध संकलन कर समिति मुख्यालय से, डेयरी संयन्त्र एवं अवशीतन केन्द्र तक परिवहन एवं विपणन करना है। इसके अतिरिक्त संघ का कार्य समिति के मार्फत दुग्ध उत्पादकों को कृत्रिम गर्भाधान द्वारा पशु प्रजनन, पशु स्वास्थ्य, उन्नत चारा बीज, सन्तुलित पशु आहार वितरण एवं कृषक शिक्षा आदि की सुविधा प्रदान करना है। वर्तमान में जिला एवं क्षेत्रीय स्तर पर 16 दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ कार्यशील हैं।

राज्य स्तर पर राजस्थान सहकारी डेयरी फैडरेशन का प्रमुख कार्य डेयरी विकास की योजना बनाना, कार्यक्रम का समन्वय, डेयरी संयन्त्रों, अवशीतन केन्द्रों एवं पशु आहार कारखानों की स्थापना एवं संचालन है। इसके अतिरिक्त, राज्य स्तर पर डेयरी विकास सम्बन्धी सभी कार्यक्रमों का सम्पादन भी फैडरेशन द्वारा किया जाता है। वर्तमान में फैडरेशन के नियन्त्रण में 10 डेयरी संयन्त्र एवं 24 अवशीतन केन्द्र कार्यशील हैं जिनकी पाश्चरीकरण एवं अवशीतन की क्षमता क्रमशः 9.10 लाख एवं 4.40 लाख लीटर प्रतिदिन है। इसके अतिरिक्त फैडरेशन के नियन्त्रण में 5 पशु आहार कारखाने तथा एक पशु प्रजनन फार्म भी कार्यशील है।

**दुग्ध संकलन एवं भुगतान**

ग्राम स्तर पर दुग्ध संकलन दुग्ध उत्पादक सहकारी समितियों द्वारा किया जाता है। दुग्ध संकलन के उद्देश्य से समितियों को विभिन्न दुग्ध मार्गों में विभाजित किया जाता है। सामान्यत: एक दुग्ध मार्ग पर 10 से 15 समितियां पड़ती हैं। जिला दुग्ध संघ के वाहन निर्धारित दुग्ध मार्ग पर जाते हैं एवं दुग्ध संकलन कर फैडरेशन के डेयरी संयन्त्रों तथा अवशीतन केन्द्रों तक पहुंचा देते हैं। डेयरी विकास कार्यक्रम प्रारम्भ करने के बाद से राज्य में दुग्ध संकलन की मात्रा में निरन्तर वृद्धि हो रही है। गत वर्षों में समितियों द्वारा किये गये दुग्ध संकलन एवं दुग्ध उत्पादकों को किये गये भुगतान का लेखा तालिका-1 में प्रस्तुत है।

## तालिका-1

### राज्य में समितियों द्वारा किया गया दुग्ध संकलन एवं भुगतान (1975-76 से 1986-87 तक)

| वर्ष | समितियों की संख्या | दुग्ध संकलन (लाख लीटर में) | भुगतान राशि (लाख रु. में) | औसत दुग्ध संकलन प्रतिदिन प्रति समिति (लीटर में) |
|---|---|---|---|---|
| 1975-76 | 692 | 302.20 | 441.00 | 120 |
| 1980-81 | 2259 | 628.27 | 1073.94 | 67 |
| 1986-87 | 4369 | 1476.09 | 3964.48 | 93 |

(स्रोत: राजस्थान सहकारी डेयरी फैडरेशन लि., जयपुर)

### दुग्ध एवं दुग्ध-पदार्थों का विपणन

राजस्थान सहकारी डेयरी फैडरेशन द्वारा उपभक्ताओं को उचित मूल्य पर शुद्ध दुग्ध एवं दुग्ध-पदार्थ उपलब्ध कराने हेतु राज्य के बड़े-बड़े शहरों में इनके वितरण की उचित व्यवस्था की गयी है। दुग्ध में मिलावट को रोकने के लिये एक नयी विधि "पोलीथीन पैक" का उपयोग किया जा रहा है, जिसकी राज्य के अधिकांश डेयरी संयन्त्रों में व्यवस्था है। जयपुर संयन्त्र में "टेटा पैक" की सुविधा भी उपलब्ध है। टेटा पैक दुग्ध बिना फ्रिज के कमरे के तापमान में ही 15 दिन तक सुरक्षित रह सकता है। इसके अतिरिक्त, जयपुर शहर में 20 स्वचालित दुग्ध वितरण केन्द्र भी कार्यशील हैं जिन पर उपभोक्ताओं को शुद्ध दुग्ध वितरित किया जाता है। दुग्ध के अतिरिक्त दुग्ध पदार्थ जैसे घी, मक्खन, पनीर एवं स्कीम मिल्क पाउडर आदि के वितरण की व्यवस्था भी राज्य में पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। स्थानीय दुग्ध आवश्यकता की पूर्ति के पश्चात शेष दुग्ध दिल्ली भेज दिया जाता है। गत वर्षों में दुग्ध विपणन की मात्रा का उल्लेख तालिका-2 में किया गया है।

## तालिका-2

### स्थानीय बिक्री एवं दिल्ली भेजे गये दुग्ध की मात्रा का विवरण (1978-79 से 1986-87 तक) (लाख लीटर में)

| वर्ष | स्थानीय बिक्री | औसत बिक्री प्रतिदिन | दिल्ली डेयरियों को की गयी बिक्री | औसत बिक्री प्रतिदिन |
|---|---|---|---|---|
| 1978-79 | 213.15 | 0.58 | 540.64 | 1.48 |
| 1979-80 | 213.35 | 0.58 | 527.94 | 1.45 |
| 1980-81 | 192.33 | 0.53 | 420.19 | 1.15 |
| 1981-82 | 234.13 | 0.64 | 450.38 | 1.23 |
| 1982-83 | 294.34 | 0.81 | 605.19 | 1.66 |
| 1983-84 | 301.12 | 0.83 | 757.31 | 2.07 |
| 1984-85 | 280.92 | 0.77 | 1023.08 | 2.80 |
| 1985-86 | 348.44 | 0.95 | 1088.57 | 2.98 |
| 1986-87 | 444.41 | 1.22 | 713.77 | 1.96 |

(स्रोत: राजस्थान सहकारी डेयरी फैडरेशन लि., जयपुर)

### दुग्ध उत्पादन वर्द्धन कार्यक्रम

राज्य में डेयरी उद्योग के विकास के लिये दुग्ध उत्पादन वर्द्धन कार्यक्रम को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस कार्यक्रम में प्रमुख रूप से चार बातों को सम्मिलित किया गया है—1. कृत्रिम गर्भाधान, 2. पशु चिकित्सा, 3. सन्तुलित पशु आहार वितरण तथा 4. उन्नत चारा बीज वितरण।

उन्नत सांडों से कृत्रिम गर्भाधान द्वारा प्रजनन हेतु बरसी में एक विदेशी नस्ल की गायों का फार्म स्थापित किया गया है। इस फार्म पर पैदा हुये विदेशी सांडों से समस्त जिला दुग्ध उत्पादक संघों के मुख्यालयों पर स्थापित वीर्य बैंकों पर वीर्य संकलन कर समिति स्तर तक पहुंचाया जाता है। इसके लिये फ्रोजन सीमन पद्धति का उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त, समिति स्तर पर चल एवं आपात पशु चिकित्सा इकाइयों के माध्यम से पशु चिकित्सा की उचित सुविधा भी प्रदान की जाती है।

सन्तुलित पशु आहार के निर्माण हेतु इस समय राज्य में पांच पशु आहार कारखाने कार्यशील हैं जिनकी उत्पादन क्षमता 440 मीट्रिक टन पशु आहार प्रतिदिन की है। इनमें उत्पादित पशु आहार समितियों के माध्यम से दुग्ध उत्पादकों को उचित दर पर वितरित किया जाता है। इसके अतिरिक्त हरे चारे का उत्पादन बढ़ाने हेतु उन्नत चारा बीज भी दुग्ध उत्पादक कृषकों को वितरित किया जाता है। गत वर्षों में दुग्ध उत्पादन वर्द्धन कार्यक्रम की प्रगति का संक्षिप्त लेखा तालिका-3 में दिया गया है।

### आर्थिक एवं सामाजिक लाभ

डेयरी विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत राज्य में करीब 2.65 लाख दुग्ध उत्पादक परिवारों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक लाभ हुआ है। इन परिवारों की वार्षिक आय में 500 रुपये से 6000 रुपये तक वृद्धि हुई है। कार्यक्रम में

सम्मिलित कृषक परिवारों की महिलाओं का न केवल आर्थिक स्तर बढ़ा है बल्कि अनुसूचित एवं पिछड़े वर्ग के किसानों एवं दुग्ध उत्पादकों को भी अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक लाभ मिला है। यहां तक कि छुआछूत जैसी कुरीति भी कुछ हद तक कम हुई है।

**तालिका-3**

**दुग्ध उत्पादन वर्द्धन कार्यक्रम की प्रगति (1975-76 से 1986-87 तक)**

| वर्ष | कृत्रिम गर्भाधान किये गये (हजारों में) | पशुचिकित्सा की गयी (हजारों में) | हरा चारा बीज वितरण (क्विंटलों में) | सन्तुलित पशु आहार वितरण (मै. टनों में) |
|---|---|---|---|---|
| 1975-76 | 2.88 | 39 | 52 | 570 |
| 1976-77 | 44.49 | 208 | 370 | 4723 |
| 1977-78 | 49.49 | 508 | 423 | 4146 |
| 1978-79 | 49.13 | 584 | 703 | 4711 |
| 1979-80 | 51.58 | 535 | 484 | 6380 |
| 1980-81 | 64.29 | 543 | 824 | 15931 |
| 1981-82 | 80.59 | 517 | 763 | 22956 |
| 1982-83 | 84.82 | 554 | 436 | 28461 |
| 1983-84 | 83.40 | 600 | 354 | 13742 |
| 1984-85 | 82.66 | 622 | 557 | 29179 |
| 1985-86 | 96.64 | 770 | 1293 | 62698 |
| 1986-87 | 94.19 | 691 | 2354 | 42402 |

(स्रोत: राजस्थान सहकारी डेयरी फैडरेशन लि., जयपुर)

## समस्याएं एवं समाधान

यदि राजस्थान की तुलना देश के अन्य राज्यों से करें तो पायेंगे कि डेयरी उद्योग ने राज्य में वांछित प्रगति नहीं की है। इसका मूल कारण इस उद्योग के समक्ष कुछ ज्वलन्त समस्याओं का होना है। इनमें से प्रमुख समस्याएं निम्न हैं:

### 1. चारा एवं पानी का अभाव

राजस्थान का अधिकांश क्षेत्र रेगिस्तानी होने के कारण यहां दुधारू पशुओं के लिये चारा एवं पानी की समस्या प्रमुख है। नियमित पड़ने वाले अकाल के कारण इस समस्या ने और अधिक गम्भीर रूप धारण कर लिया है। इस वर्ष के भीषण अकाल में तो चारा एवं पानी के अभाव में लाखों दुधारू पशु मौत के मुंह में चले गये हैं। पूर्वी राजस्थान में जहां सिंचाई के साधन उपलब्ध हैं एवं भूमि भी उपजाऊ है, चारा एवं पानी की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती।

उक्त स्थिति का मुकाबला करने के लिये राज्य सरकार द्वारा सिंचाई के साधनों का विकास करने की तुरन्त आवश्यकता है जिससे दुधारू पशुओं के लिये चारा एवं पानी दोनों उपलब्ध हो सकें। चारे की मांग एवं पूर्ति में सन्तुलन बनाये रखने के लिये विभिन्न क्षेत्रों में स्थायी रूप से चारा डिपो खोलने चाहिये। पश्चिमी राजस्थान में जहां सिंचाई की सुविधा उपलब्ध नहीं है वहां पर हरा चारा प्रदान करने वाले वृक्ष लगाने की आवश्यकता है। वास्तव में राज्य में श्वेत क्रान्ति को सफल बनाने के लिये क्रान्ति प्रारम्भ करना जरूरी है।

### 2. दुधारू पशुओं की कमजोर नस्ल

राज्य में गाय एवं भैंस दोनों ही प्रकार के पशुओं की अधिकांश नस्लें अच्छी नहीं हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर राज्य में डेयरी संस्थाओं द्वारा विदेशी नस्ल के सांडों से कृत्रिम गर्भाधान कराने की विधि का उपयोग किया जा रहा है, किन्तु राजस्थान की परिस्थितियों को देखते हुये इस नीति से अधिक सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं है। विदेशी नस्ल की गायों को खिलाने पिलाने के सम्बन्ध में ज्यादा ध्यान रखना पड़ता है तथा इनमें कई प्रकार की संक्रामक बीमारियों का अधिक फैलने का अन्देशा भी रहता है। राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्रों में जहां अधिकांश पशुपालक भ्रमणशील प्रवृत्ति के होते हैं एवं जहां गायों को मुश्किल से दिन में दो बार पानी भी नसीब नहीं होता है, यह प्रजनन नीति उपयुक्त प्रतीत नहीं होती। शेष राजस्थान में भी पशुपालन की स्थिति अच्छी नहीं है। प्रजनन नीति की दूसरी कमी यह देखने में आयी है कि इसमें भैंस की नस्ल सुधार पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है जबकि राज्य में सबसे अधिक दुग्ध प्राप्ति का प्रमुख स्रोत है। अतः डेयरी विकास कार्यक्रम को अधिक सार्थक बनाने के लिये देशी नस्ल के सांडों से कृत्रिम गर्भाधान कराने पर अधिक बल देने के साथ-साथ भैंस की नस्ल सुधार पर भी आवश्यक ध्यान देना चाहिये।

### 3. कृषकों की डेयरी विकास कार्यक्रमों में कम रुचि

राज्य में चलाये जाने वाले डेयरी विकास कार्यक्रमों में दुग्ध उत्पादकों द्वारा पूर्ण रुचि नहीं दिखाये जाने के कारण उन्हें वांछित लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। दुग्ध उत्पादकों को अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा वैज्ञानिक पशुपालन की विधियों को अपनाना एवं उत्पादित दुग्ध के

विक्रय के लिये सहकारी समितियों का गठन करना आवश्यक है। अतः कृषकों द्वारा डेयरी विकास कार्यक्रमों को अपनाने एवं उनमें रूचि लेने के लिये तथा राज्य में डेयरी विकास के लिये स्थापित संस्थागत एवं सेवा संरचना का उचित उपयोग करने के लिये वर्तमान कृषक शिक्षा कार्यक्रमों को अधिक मजबूत एवं सन्तुलित करने के साथ-साथ कुछ परम्परागत तरीकों जैसे कठपुतली का खेल, लोकगीत, नाटक एवं मेलों आदि का आयोजन करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, वैज्ञानिक दुग्ध उत्पादन की विधियों को अपनाने वाले कृषकों को नकद ईनाम देकर भी प्रोत्साहित किया जा रहा है।

**4. प्रबन्धकीय कुशलता का अभाव**

राज्य में सहकारी डेयरी संस्थाओं का प्रबन्ध एवं संचालन, विशेष रूप से उच्च स्तर पर, विभिन्न विभागों से प्रतिनियुक्ति पर आये अधिकारियों द्वारा किया जाता है। ये अधिकारी सामान्य प्रशासन में तो ज्ञान रखते हैं किन्तु व्यवसाय प्रबन्ध के ज्ञान एवं अनुभव का इनमें सामान्यतः अभाव पाया जाता है। अन्य विभागों से आने वाले अधिकारी इन संस्थाओं के कार्य में अधिक रुचि भी नहीं रखते हैं क्योंकि उन्हें अपने मूल विभाग में ज्यादा सम्मान एवं अधिकार प्राप्त होते हैं। इन अधिकारियों का दूसरे विभागों में जल्दी-जल्दी स्थानान्तरण होने की वजह से भी इन संस्थाओं के कुशल प्रबन्ध में बाधा आती है। प्रबन्ध में कुशलता लाने के लिये इन संस्थाओं में ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना आवश्यक है जिन्हें व्यवसाय प्रबन्ध एवं विशेष रूप से डेयरी प्रबन्ध का अनुभव हो। यदि सरकारी अधिकारियों को प्रतिनियुक्ति पर रखना आवश्यक हो तो ऐसे व्यक्तियों को रखा जाना चाहिये जिन्हें व्यवसाय प्रबन्ध का कुछ अनुभव हो। ऐसे अधिकारियों को एक निश्चित समय तक दूसरी संस्थाओं में स्थानान्तरित नहीं करना चाहिये जिससे ये अधिकारी निश्चित समय तक निश्चिन्त होकर इन संस्थाओं के प्रबन्ध में कुशलता ला सकें।

**5. दुग्ध उत्पादन में मौसमी परिवर्तन**

राजस्थान में दुग्ध उत्पादन में मौसमी परिवर्तन पाये जाते हैं। पूर्वी राजस्थान में जहां दुग्ध उत्पादन का मुख्य स्रोत भैंस है, दुग्ध उत्पादन दिसम्बर से फरवरी माह तक अधिकतम तथा मई से अगस्त माह तक न्यूनतम होता है। दुग्ध उत्पादन में इस प्रकार के मौसमी परिवर्तनों का प्रभाव सहकारी डेयरी संस्थाओं द्वारा संकलित की जाने वाली दुग्ध मात्रा पर पड़ता है। दुग्ध उत्पादन में कमी वाले समय में दुग्ध संकलन की मात्रा अधिक उत्पादन वाले समय की तुलना में 20 प्रतिशत से भी कम हो जाती है जो कि डेयरी संस्थाओं के लिये एक गम्भीर समस्या है। दुग्ध संकलन कम होने से परिवहन लागत बढ़ जाती है एवं डेयरी संयत्रों एवं अवशीतन केन्द्रों की क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता। इसके लिये दुग्ध उत्पादकों को ऐसी उन्नत नस्ल के दुधारू पशुओं को पालने के लिये प्रोत्साहित करना होगा जो लम्बी अवधि तक विशेष रूप से कमी वाले दिनों में अधिक दुग्ध दे सकें। कमी वाले दिनों में डेयरी संस्थाओं द्वारा दुग्ध उत्पादकों को दिये जाने वाले मूल्य में भी वृद्धि करनी चाहिये जिससे वे इस अवधि में निजी व्यापारियों को दुग्ध का विक्रय न करें।

**6. दुग्ध की खरीद-फरोख्त की समुचित व्यवस्था का अभाव**

अभी तक सहकारी डेयरी संस्थाओं द्वारा 22 जिलों में ही दुग्ध-क्रय की व्यवस्था की गयी है। राज्य के शेष 5 जिलों में दुग्ध क्रय की कोई व्यवस्था नहीं है। अधिकांश जिला दुग्ध उत्पादक संघों द्वारा दुग्ध का दिन में एक बार ही संकलन किया जाता है। परिणामस्वरूप दुग्ध उत्पादकों के समक्ष अपने पशुओं से दूसरे समय में निकाले गये दुग्ध की बिक्री की समस्या आ जाती है। ऐसी स्थिति में वे निजी व्यापारियों के शोषण के शिकार होते हैं या फिर दुग्ध उत्पादन व्यवसाय में ही कम रुचि लेने लगते हैं। ये दोनों ही स्थितियां डेयरी उद्योग के लिये घातक हैं। अतः डेयरी संस्थाओं द्वारा राज्य में दुग्ध का क्रय दिन में दो बार करने के साथ-साथ राज्य के शेष पांच जिलों में भी इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

**7. दुग्ध उत्पादकों की दिक्कतें दूर करने की कारगर व्यवस्था नहीं**

प्रायः यह देखा गया है कि दुग्ध उत्पादकों की ग्राम स्तर पर दिक्कतें दूर करने की कोई कारगर व्यवस्था नहीं है। जिला दुग्ध उत्पादक संघों को शिकायत करने पर तुरन्त कोई कार्यवाही नहीं की जाने के कारण दुग्ध उत्पादकों में काफी निराशा व्याप्त है। परिणामस्वरूप कई दुग्ध

शेष पृष्ठ 33 पर

# सेंकड़ी गांव में जलोत्थान सिंचाई योजना

अशोक कुमार यादव

लोग बाग यह कहते हैं कि सेंकड़ी वालों में अब हेंकड़ी आ गयी है। राजस्थान में चितौड़गढ़ जिले की आदिवासी बहुल प्रतापगढ़ पंचायत समिति का छोटा-सा तीन सौ की आबादी वाला निपट आदिवासियों का सेंकड़ी गांव। रेल तो क्या वहां बस भी नहीं पहुंचती। दूर-दराज के इस गांव में जीप से भी बड़ी मुश्किल से पहुंचा जा सकता है। बेचारे आदिवासी इन्द्रदेव की मेहरबानी पर ही एक फसल की उम्मीद किया करते थे। गांव के किनारे पर बह रही शेवना नदी का पानी उनके लिए उपयोगी नहीं था, पर अब शेवना नदी का पानी उनके खेतों में आ गया तो उनका मुरझाया हुआ चेहरा खिल उठा है। नवीनतम कृषि तकनीक को अपनाकर उन फसलों की पैदावार ले रहे हैं जिनके बारे में उन्होंने सोचा तक नहीं था। अब उनके गांव तक सड़क भी बन जायेगी।

सेंकड़ी गांव के आदिवासियों को सपने में ही यह उम्मीद नहीं थी कि धोरों में होता हुआ शेवना नदी का पानी कभी उनके खेतों को हरा भरा बनाकर उन्हें गरीबी के चंगुल से मुक्ति दिला देगा और सेंकड़ी को विकास की नयी राह पर ला देगा। इस वर्ष के भीषणतम अकाल में आस-पास के गांवों के किसान पशुओं के लिए चारे के लिए तरस रहे हैं परन्तु सेंकड़ी गांव के पशुओं को चारे की कमी नहीं है। अकाल के कारण वे प्रति वर्ष गांव को छोड़कर मजदूरी करने बाहर निकल जाया करते थे पर वे इस वर्ष अपने खेतों में हीं काम पर लगे हैं। उन्होंने यह भी कभी सोचा न था कि वे अपने खेतों में सरसों, मूंगफली, लहसुन व हरा चारा बोयेंगे। अब वे यह बता रहे हैं कि हुकम इतनी मूंगफली ले ली, सरसों इतनी हो जायेगी, गेहूं इतनी बोरी होगी और लहसुन भी खूब होगा। सचमुच सेंकड़ी गांव वाले निहाल हो गये हैं और उनमें बदलाव का रंग नजर आने लगा है।

सेंकड़ी गांव के भाग्य को बदलने में यह सब कमाल कर दिखाया है शेवना नदी पर स्थापित की गयी सामुदायिक जलोत्थान सिंचाई योजना ने। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण ने योजना तैयार की, आवश्यक सर्वे के बाद मंजूरी भी दिलायी और बहुत कम समय में इसे क्रियान्वित कर दिखाया। योजना की कुल लागत 4 लाख 56 हजार रुपये की है जो राज्य के विशिष्ठ योजना संगठन ने मैसिव योजना के अन्तर्गत अनुदान सहायता के रूप में स्वीकृत की। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण की इस योजना को क्रियान्वित कराने में गांव वालों ने भी अपना रचनात्मक सहयोग दिया तथा श्रमदान कर वे सभी जरूरतें पूरी की जो कि इसके लिए आवश्यक थीं। गांव के नौजवान लच्छी राम मीणा शेवना नदी के उस पार मध्यप्रदेश के नन्दावता तथा बिलेसरी गांव में लगी जलोत्थान योजना के अनुरूप अपने गांव के लोगों को भी ऐसी ही योजना का लाभ दिलवाने के लिए प्रयासरत थे। लच्छीराम इस गांव में सबसे ज्यादा पढ़े लिखे होने के कारण नेतृत्व भी करते हैं। लच्छीराम से संपर्क किया तो जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के अधिकारी तैयार हो गये। कनिष्ठ अभियंता श्री के.एल. जैन मुश्किल से रास्ता तय कर अवलेश्वर से सेंकड़ी पहुंचे तो गांव वालों को एकाएक विश्वास नहीं हुआ और कहने लगे कि साहब, आप आज तो आ गये पर आज जाने के बाद वापस नहीं आओगे। श्री जैन को यह बात चुभ गयी और इस योजना को पूरा करने की बात ठान ली। उन्होंने गांव वालों से सहयोग मांगा। अवलेश्वर से असावता तक का सड़क मार्ग तो ठीक ठाक था, पर आगे पहुंचना मुश्किल था। गांव वाले जुट गये और श्रमदान कर असावता से रामगढ़ होते हुए सेंकड़ी तक की उबड़ खाबड़ सड़क को श्रमदान से ठीक कर दिया।

शेवना नदी से पाईप लाईन के जरिये खेतों में धोरों

तक पानी पहुंचाने में बाधा थी लगभग डेढ़ हजार मीटर लम्बी पहाड़ी। गांव के सभी लोग भिड़ गये। आखिर उनकी मेहनत रंग लायी। जलोत्थान योजना की पाईप लाईन को बिछाने के लिए इस पहाड़ी को साफ कर दिया। जिला ग्रामीण विकास अभिकरण ने भी इस श्रमदान में सहयोग दिया। अभियन्ताओं ने भी गांव वालों के उत्साह को बरकरार बनाये रखा और आखिर में इस स्वप्न को साकार कर दिखाया। जलोत्थान योजना के लिए शेवना नदी के इस किनारे पर बीस-बीस अश्व शक्ति की तीन विद्युत चालित मोटर लगायी गयी और लगभग 53 मीटर ऊंचाई वाली इस पहाड़ी पर एक हजार 850 मीटर लम्बाई की पाईप लाईन बिछाकर नदी का पानी उनके खेतों के धोरों में पहुंचा दिया गया।

इस दुर्गम स्थल पर बनायी गयी इस सामुदायिक जलोत्थान सिंचाई योजना से 52 किसानों की 140 एकड़ भूमि में सिंचाई का लाभ मिला है। लाभान्वित 21 सीमान्त एवं 31 लघु कृषकों में से 21 जनजाति तथा 14 अनुसूचित जाति के काश्तकार हैं। योजना क्षेत्र में कृषकों के खेतों तक पानी पहुंचाने के लिए धोरों का निर्माण कृषकों से ही करवाया गया है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस योजना का संचालन व संधारण कृषक अपने खर्चे पर कर रहे हैं। सहकारिता के आधार पर कृषकों की समिति गठित कर दी गयी है जो कृषकों से सिंचाई शुल्क वसूल करती है और बिजली का बिल जमा कराती है। सचमुच यह योजना कृषकों की एकता का भी अनूठी मिसाल है।

इसके बाद सेंकड़ी गांव के किसानों का भाग्य बदलने में सबसे ज्यादा सहायक हुआ है राजस्थान कृषि विश्व विद्यालय के अधीन चितौड़गढ़ में चलने वाला कृषि ज्ञान केन्द्र। सामुदायिक जलोत्थान सिंचाई योजना के लाभान्वित काश्तकारों को योजना क्रियान्वित होते ही इन्हें तीन वर्ष के लिए गोद ले लिया गया है। अब सेंकड़ी गांव में कृषि ज्ञान केंद्र के अधिकारी बराबर आते हैं और योजना के किसानों को सिंचाई करने की तकनीकी, उन्नत बीज, कृषि आदान, कीटनाशक दवाइयां और नवीनतम कृषि तकनीकी मुफ्त में उपलब्ध करा रहे हैं। खरीफ की भरपूर फसल लेने के बाद अब इस गांव के किसान रबी की फसलें भी अच्छी खासी लेने लगे हैं।

लगभग छः-सात माह पूर्व सेंकड़ी गांव में जाना हुआ तो ऐसा लगा जैसे इस गांव पर अकाल की काली छाया बिल्कुल नहीं है। आस पास के गांवों के खेत सूखे पड़े थे पर जलोत्थान सिंचाई योजना की बदौलत सेंकड़ी गांव के खेत हरे भरे दिखाई पड़ रहे थे।

लच्छी राम मीणा गांव के जागरूक एवं पढ़े लिखे किसान हैं। इनका कुआँ भी है। पहले केवल 35 बीघा जमीन खरीफ में भी 20 बीघा ही खेती किया करते थे। अफीम के पट्टे को बचाने और खाने के लिए गेहूं पैदा करने के लिए मुश्किल से रबी में चार बीघा खेती किया करते थे पर लिफ्ट की बदौलत इस वर्ष रबी में लच्छीराम ने अपनी पूरी 35 बीघा में फसलें बोयी है। इसमें से चार बीघा में लहसुन, सात बीघा में गेहूं, 15 आरी जमीन पर अफीम, 5 बीघा में मेंथी, एक बीघा में धनिया, दो बीघा में सरसों तथा 15 बीघा में चने की फसलें बोयी हैं। उसका कहना है कि वह पहली बार अपने खेत में इस वर्ष 50 हजार रुपये का शुद्ध मुनाफा ले सकेगा। कई फसलें तो उसने अपने खेत में पहली बार ही बोयी हैं।

उल्लेखनीय है कि कृषि ज्ञान केंद्र द्वारा इस रबी में 70 किसानों को एक-एक बीघा में बुवाई करने के लिए एक-एक किलोग्राम टी-59 वरुणा किस्म की सरसों के बीज, पन्द्रह-पन्द्रह किलोग्राम डी ए पी खाद तथा दस-दस किलोग्राम यूरिया तथा पांच-पांच किलोग्राम पेराथ्यान डस्ट मोयला मारने के लिए वितरित करवाया गया। कृषि ज्ञान केंद्र प्रभावी अधिकारी, श्री सत्यवीर सिंह त्यागी का कहना है कि सेंकड़ी गांव के किसानों को तीसरा फसल जायद की लेने के लिए तैयार किया जा रहा है। बगीचे विकसित करने के लिए आम, संतरा, अमरूद व पपीता के पौधे भी वितरित कराये गये हैं। सब्जियों की पैदावार करने की भी सलाह दी जा रही है।

पचास घरों की बस्ती वाले सेंकड़ी गांव में एक स्कूल भी नहीं है। करीब दो दर्जन छात्र पास के रामगढ़ गांव में पढ़ने जाते हैं। आंगनवाड़ी केन्द्र जरूर चलता है जिसमें प्रतिदिन 50 बच्चों को पोषाहार व अनौपचारिक शिक्षा की सुविधा मुहैया करायी जाती है। पेयजल की सुविधा के लिए गांव में दो हैण्ड पंप भी लगवाये गये हैं। बिजली की लाईन बिछी, तो 20 घरों में बिजली भी लग गयी है। कुओं से मुश्किल से गांव की 223 हैक्टेयर भूमि में से केवल एक

हैक्टेयर में सिंचाई हो पाती थी अब लिफ्ट की बदौलत 56 हैक्टेयर अतिरिक्त क्षेत्र में सिंचाई होने लगी है।

सेंकड़ी गांव में पिछले वर्ष में एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम में से कोई डेढ़ दर्जन परिवारों को लाभ पहुंचाया गया है। चार व्यक्तियों को मकान पर छप्पर डालने के लिए अनुदान सहायता उपलब्ध करायी गयी है तथा 12 व्यक्तियों को आवासीय भूखण्ड दिये गये हैं वहीं 15 व्यक्तियों ने स्वैच्छिक नसबंदी आपरेशन कराये हैं। सेंकड़ी जलोत्थान सिंचाई योजना से पूरा वर्ष लाभ दिलवाने के लिए शेवना नदी पर एक एनिकट निर्माण के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना के अन्तर्गत 16 लाख 80 हजार रुपये मंजूर किये गये हैं। एक मीटर ऊंचाई वाले इस एनिकट के बन जाने के बाद शेवना नदी में पानी का भराव बराबर रहेगा। इसके साथ ही असावता से सेंकड़ी गांव तक की सड़क का निर्माण कराने के लिए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना मद से 8 लाख रुपये की स्वीकृति दी गयी है जिसके फलस्वरूप सेंकड़ी तक पहुंचने में आसानी हो जायेगी। गांव के जागरूक किसान लच्छी राम तथा योजना से जुड़े अधिकारियों की यह कल्पना है कि सेंकड़ी गांव शीघ्र ही आदर्श गांव बन जाये। दूसरे विभाग भी इस गांव तक पहुंचने लगे हैं। डेयरी विकास की ओर कदम बढ़ रहे हैं। अल्प बचत ग्राम घोषित करने के लिए सभी गांव वालों के बचत खाते खुलवाये जा रहे हैं। राजस्थान कृषि उद्योग निगम नये-नये कृषि यंत्र उपलब्ध करा रहा है। गोबर गैस संयंत्र लगाने की भी योजना बनायी गयी है।

**जिला सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी**
**चितौड़गढ़ (राज.)**

---

पृष्ठ 30 का शेष

उत्पादक सदस्य इन दुग्ध उत्पादक समितियों से अलग हो रहे हैं जो कि एक अच्छी बात नहीं है। इसलिये डेयरी संस्थाओं द्वारा दुग्ध उत्पादकों की समस्याओं को दूर करने की तुरन्त कोई कारगर व्यवस्था करनी चाहिये तथा समिति स्तर पर बेईमानी करने वाले व्यक्तियों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिये।

**निष्कर्ष**

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि राज्य में डेयरी उद्योग के विकास के लिये एक मजबूत त्रिस्तरीय संगठन ढांचा कायम किया गया है जो वर्तमान में दुग्ध उत्पादन, दुग्ध संकलन, दुग्ध परिवहन, उत्पाद निर्माण एवं विपणन का कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न कर रहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न दुग्ध उत्पादन संवर्द्धन कार्य भी चलाये जा रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप आज राज्य में दुग्ध का उत्पादन 35 लाख टन प्रतिवर्ष हो गया है। किन्तु दूसरी तरफ यह कहा जा सकता है कि डेयरी उद्योग का विकास गुणात्मक नहीं होकर परिमाणात्मक हुआ है। अतः डेयरी उद्योग प्रबन्धकों को गुणात्मक विकास पर अधिक ध्यान देना चाहिये। साथ ही इस उद्योग से सम्बन्धित अन्य समस्याओं जैसे दुधारू पशुओं की कमजोर नस्ल का होना, चारे की कमी, दुग्ध उत्पादन में सामयिक परिवर्तन, पशुओं के पीने के पानी की कमी आदि का भी हल करने का प्रयास करना चाहिये।

**प्राध्यापक व्यवसाय प्रशासन**
**राजकीय महाविद्यालय**
**सरदार शहर, राजस्थान**
**पिन- 331401**

# पानी की समस्या: समाधान और प्रयास

अरविन्द घोष

अभी पिछले दिनों दिल्ली के नागरिकों को घरेलू इस्तेमाल तथा पीने के पानी के गंभीर संकट का सामना करना पड़ा हालांकि दिल्ली में पानी की कमी पहले भी रही है। लेकिन इस बार का संकट अभूतपूर्व था और शायद ऐसा संकट फिर कभी आएगा भी नहीं।

दिल्ली निवासी सौभाग्यशाली हैं कि दिल्ली भारत की राजधानी है और उनकी समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार की पूरी मशीनरी जुट गई है। लेकिन अन्य शहरों तथा पिछले वर्ष सूखे के मारे अनेक गांवों-कस्बों में क्या हो रहा है? वहां लोगों को अपनी दैनिक आवश्यकता के लिए पानी इकट्ठा करने के लिए कितनी कठिनाइयां झेलनी पड़ रही हैं। वे रोज नहा नहीं पाते, नियमित रूप से कपड़े नहीं धो पाते। लोग अपने घर-बार छोड़ कर उन स्थानों की ओर जाने लगे हैं जहां कम-से-कम उन्हें पीने का पानी तो नसीब हो।

इस वर्ष के सूखे, वर्षा न होने से पिछले वर्ष खरीफ के मौसम में कृषि उपज में कमी तथा गांवों-कस्बों में पीने के पानी का गंभीर संकट ये सब इस बात के संकेत हैं कि आने वाले वर्षों में स्थिति कितनी विकट होने वाली है। अगर अब एक-दो मानसून अच्छे भी बरस जाएं तो भी इस में कोई परिवर्तन होने की संभावना नहीं है। भूमिगत पानी बहुत अधिक खींचा गया है। देश के अनेक भागों में नदियों में तलछट भर गई है। जिसके कारण उनमें बहने वाले पानी की मात्रा कम हो गई है। भंडारण जलाशयों में भी वर्षा का पानी कुछ एकत्र हुआ है। इन जलाशयों में तलछट काफी मात्रा में भर गई है। कुएं और नलकूप या तो सूख गए हैं या फिर उनका रखरखाव उचित प्रकार से नहीं किया जा रहा।

दिन-ब-दिन पानी एक दुर्लभ वस्तु होता जा रहा है। समय आ गया है कि हम अपने जल-संसाधनों और जल के उचित वितरण पर कड़ी नजर डालें। एक सामान्य वर्ष में भारत में लगभग 40 करोड़ हैक्टेयर मीटर पानी प्राप्त होता है। इसमें से 39 करोड़ 20 लाख हैक्टेयर मीटर केवल-पानी और 20 लाख मीटर बर्फ पिघलने से आता है। इस मात्रा में से केवल 18 करोड़ हैक्टेयर मीटर भू-तल पर (नदियों-तालाबों इत्यादि, में) बहते हुए प्राप्त होता है। इसमें से 10 करोड़ हैक्टेयर मीटर पानी व्यर्थ जाता है अर्थात समुद्र में जा मिलता है।

दूसरे शब्दों में केवल लगभग 8 करोड़ हैक्टेयर मीटर पानी ही इस्तेमाल के लिए बचता है। लगभग 6 करोड़ 70 लाख हैक्टेयर मीटर पानी भूमि में रिस जाता है और भूमि गत पानी का स्तर बढ़ता है इसे भी प्रयोग करने योग्य पानी माना जा सकता है।

ऐसी स्थिति में जहां भारत की आबादी लगभग 80 करोड़ और पशुधन की संख्या इससे भी अधिक तथा लगभग 18 करोड़ हैक्टेयर कृषि क्षेत्र हो, इस समय पानी की अत्यधिक कमी से ग्रस्त है। हां केवल कुछेक इलाकों में पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अगर तुरन्त कोई उपाय नहीं किए गए तो देश के अनेक भागों में विपत्ति मंडराने लगेगी। हमें अपने प्रयास फौरन शुरू करने होंगे अन्यथा अगली शताब्दी में देश के सामने दो महान खतरे होंगे– पानी की कमी और पर्यावरण विनाश।

ऐसा भी नहीं है कि इस दिशा में कुछ किया नहीं जा रहा। गांवों में पीने के पानी की समस्या से निपटने के लिए

एक टैक्नोलॉजी मिशन ने कार्य शुरू कर दिया है और दशक के अंत तक देश में पीने के पानी की कमी वाले अधिकांश गांवों में पानी पहुंचा दिया जाएगा। यह मिशन न केवल गांवों में पानी पहुंचाएगा बल्कि पानी की गुणवत्ता पर भी नजर रखेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि ग्रामीणों को मिलने वाला पानी वास्तव में घर में भर कर रखने लायक हो।

शहरों के लिए सरकार ने अप्रैल 1981 में दस वर्ष का एक कार्यक्रम आरंभ किया जिसके अंतर्गत 1990 तक सभी शहरी तथा ग्रामीण इलाकों में पीने का पानी पहुंचाने का लक्ष्य है। इसी कार्यक्रम के अंतर्गत प्रथम श्रेणी के सभी शहरों में जलमल व्ययन तथा जलमल की सुविधाएं प्रदान करने तथा द्वितीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी के शहरों में 50 प्रतिशत आबादी को कम लागत वाली स्वच्छता-सुविधाएं देने का लक्ष्य भी रखा गया है। ग्रामीण स्वच्छता का लक्ष्य 25 प्रतिशत निर्धारित किया गया।

1984-85 के अंत में इस कार्यक्रम का जायजा लिया गया। पता चला कि शहरों में पानी की सप्लाई चार वर्षों में केवल 0.6 प्रतिशत बढ़ाई जा सकी है। इतनी धीमी प्रगति वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण नहीं बल्कि कुशल प्रबंध विशेष सामग्री, संगठनात्मक तथा संस्थागत त्रुटियों, रेल वैगनों की कमी, भूमि-अधिग्रहण तथा परियोजना-संभाव्यता रिपोर्टों के अभाव के कारण हुई।

इन कारणों से सरकार को अपने इस कार्यक्रम में संशोधन करना पड़ा। अब 1990 में 100 प्रतिशत लक्ष्य की बजाए 1991 तक 90 प्रतिशत आबादी को उक्त सुविधाएं देने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। नदियों-झीलों तथा अन्य स्रोतों से उपलब्ध पानी का उचित तथा बुद्धिमता पूर्वक प्रयोग करने के महत्व को स्वीकारते हुए सभी राज्यों के मुख्य मंत्री पिछले वर्ष राष्ट्रीय जल नीति पर सहमत हुए। यह इस दिशा में पहला सार्थक कदम था।

इस दिशा में दूसरा कदम अभी हाल में उठाया गया है। जल संसाधन मंत्रालय से संबद्ध संसदीय सलाहकार समिति के सदस्यों की एक उप-समिति ने नदी थाला संगठन बनाने का सुझाव दिया है जिनका प्रबंध केन्द्र सरकार राज्यों के सहयोग से चलाए। इस से कई राज्य मिल कर संयुक्त रूप से नदी जल का उपयोग कर सकेंगे। अभी तक एक राज्य अकेला ही अपने नदी जल का उपयोग करता था। इस सुझाव से विभिन्न राज्यों के बीच नदी जल विवाद अगर पूरी तरह समाप्त नहीं होंगे तो उनमें काफी हद तक कमी अवश्य हो जाएगी।

फिलहाल गंगा, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा, महानदी, गोदावरी, कृष्णा तथा कावेरी थालों के लिए संगठन बनाने का प्रस्ताव है। यह सभी हमारे देश के प्रमुख नदी थाले हैं। देश का बहुत बड़ा भूभाग उनके अंतर्गत आता है। अतः इन जल-संसाधनों का समन्वित रूप से उपयोग किए जाने से निश्चय ही देश की अधिकांश जनसंख्या लाभान्वित होगी।

जल नीति में स्पष्ट कहा गया है कि जल-उपयोग की किसी भी भावी योजना के पीने के पानी को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाएगी। अतः नदी थाला संगठन बनाए जाने से पीने के पानी की सप्लाई बेहतर सुनिश्चित की जा सकेगी।

उप-समिति ने एक और वर्णन-योग्य सिफारिश की है। कुछ बड़ी परियोजनाओं को, जिनके लिए राज्य सरकारें वित्त जुटाने की स्थिति में नहीं हैं, राष्ट्रीय परियोजनाएं मान लिया जाए और केंद्र उनके लिए धन दे। यह बकाया पड़ी हुई योजनाओं को लागू करने की दिशा में एक बड़ा कदम होगा। लेकिन यह एक संसदीय समिति की मात्र एक सिफारिश है। फिलहाल इसने केवल आशाएं जगाई हैं। इस सिफारिश पर केन्द्र तथा राज्यों को सहमत होने के लिए काफी समय लगेगा, जो एक सामान्य बात है।

दिल्ली तथा अन्य स्थानों पर पीने के पानी की कमी की समस्या का फिर उल्लेख करते हुए यहां यह कहना होगा कि अब प्रत्येक व्यक्ति महसूस करने लगा है कि पानी अब मुक्त रूप से उपलब्ध वस्तु नहीं रह गया है। जीव-जगत के जीवन के लिए अत्यावश्यक इस वस्तु को बहुत सोच-समझ कर इस्तेमाल करना होगा। समय बीतने के साथ-साथ पानी भी लगातार बहुमूल्य होता जाएगा। पानी की बर्बादी रोकने के लिए हमें इस ओर कड़ाई से काम लेना होगा। लेकिन प्रकृति की इस देन को सुरक्षित रखने के लिए हमें कुछ ठोस उपाय करने होंगे।

**अनुवादः राजेन्द्र चुग**
**66/313, डी.आई.जैड.एरिया, सेक्टर-2**
**कालीबाड़ी मार्ग, नई दिल्ली-110001**

तीसरी किस्त

# सार्वजनिक कोष कार्यक्रम-नगालैंड के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन अभियान

अ.मा. गोखले

संयुक्त सचिव, ग्रामीण विकास विभाग

इसके बाद प्रश्न यह उठा कि क्या उपायुक्त यह काम कर पायेंगे? क्या वे ग्रामवासियों में अपना विकास स्वयं करने की उत्सुकता व दिलचस्पी पैदा कर सकेंगे?

इस दिशा में उपायुक्तों को इस कार्यक्रम का प्रचार करने को कहा गया। इसके लिए उन्हें हर तरह के माध्यम, तौर तरीके का उपयोग करने की छूट थी। इस कार्य में कुछ विशेष परिस्थितियां भी देखने को मिलीं। नगालैंड में कुछ जनजातियां ऐसी हैं जिनमें आर्थिक व सामाजिक अधिकार एक मुखिया के हाथ में केंद्रित होते हैं। नगालैंड में सोलह जनजातियों में से दो में यह प्रणाली विद्यमान है।

इस कार्यक्रम के प्रचार के समय यह आशंका थी कि गांव में आम आदमी के प्रति जवाबदेह सार्वजनिक कोष समिति द्वारा संचालित सार्वजनिक कोष की इस अवधारणा पर ग्राम मुखिया की प्रतिक्रिया संभवतः अनुकूल न हो। अतः अधिकारी सबसे पहले इन मुखियाओं से मिले तथा इनके सहयोग से जो समितियां बनीं इन मुखियाओं के आसपास के लोगों को शामिल करके गठित की गयीं।

इनके गठन के छः माह पश्चात समितियों के लाभ व उपयोग संबंधी जानकारी आम ग्रामवासियों तक पहुंचाने के लिये विशेष प्रयत्न करने पड़े। लोगों का कहना था कि गांव की सारी भूमि मुखिया की है। हमारे यहां कोई सम्पत्ति सार्वजनिक नहीं रही। तो सार्वजनिक कोष कैसे हो सकता है? दूसरी ओर मुखिया लोगों का कहना था कि इस कार्यक्रम में उनकी कोई रुचि नहीं है और हम अपना वर्चस्व कायम रखेंगे।

लेकिन अधिकारियों ने दोनों पक्षों को समझाने की कोशिश की और इसमें उन्हें सफलता मिली। ग्रामवासियों को उन्होंने समझाया कि दुनिया में कुछ न कुछ ऐसा है जो हम सबका है, उन पर हम सबका बराबर अधिकार है। हवा, पानी हम सबके लिये है। हम सबके लिए क्या एक सार्वजनिक कोष नहीं हो सकता?

मुखियाओं में उनके नेतृत्व व इसमें निहित कर्तव्य व उत्तरदायित्व के प्रति चेतना पैदा की गयी। उन्हें समझाया गया कि वे अपने ग्रामवासियों के नेता हैं। इस नाते उनके कल्याण व प्रगति की जिम्मेदारी भी उनकी है। इस कार्यक्रम से वे अपने लोगों की अधिक अच्छी तरह देखभाल कर सकेंगे। गांव की सारी भूमि उनकी है। परन्तु कुछ भूमि वे अगर अलग ग्रामवासियों के लिये निश्चित कर दें तथा उनसे कहा जाये कि इसकी देखरेख वे स्वयं करें, इसे बेचने का उन्हें कोई अधिकार नहीं होगा तो वे गांव छोडकर कहीं और नहीं जाना चाहेंगे।

इस प्रभावी प्रचार के परिणाम आशातीत रहे। एक अधिकारी चालीस गांवों में घूमा। एक-दो गांवों को छोड़कर बाकी सब गांवों में उसके प्रचार का भरपूर प्रभाव पड़ा। कार्यक्रम ने जड़ें पकड़ लीं। उल्लेखनीय है कि नगालैंड सरकार ने इस संबंध में दोहरी नीति अपनायी। एक यह थी कि सामुदायिक कल्याण व व्यक्तिगत लाभ उपलब्ध कराने वाली स्कीमें बनाकर लागू करने के लिये प्रत्येक गांव को वार्षिक अनुदान दिया जाये। दूसरी नीति यह थी कि पहले दो वर्षों में प्रत्येक गांव को वहां की जमा धनराशि के बराबर अनुदान दिया जाये।

योजना आयोग के एक दल ने नवम्बर, 1981 में चार गांवों में इस कार्यक्रम का कार्यान्वयन देखा। उसके दौरे के बाद प्रति घर आबंटन एक सौ रुपये से बढ़ाकर दो सौ रुपये कर दिया गया तथा बराबर राशि का अनुदान देने की अवधि बारह माह से बढ़ाकर चौबीस माह कर दी गयी।

इन दो नीतियों के पश्चात तीसरा चरण था सामुदायिक कोष से मदद लेकर कार्यकलाप तैयार करने के

लिए सार्वजनिक कोष समितियों को प्रोत्साहित करना। नगालैंड में सार्वजनिक कोष कार्यक्रम का उद्देश्य यह है कि स्थानीय ग्राम मुखियाओं को इस बात के लिये प्रेरित किया जाये कि वे गांव के बारे में, ग्रामवासियों के बारे में फैसले सार्वजनिक रूप से करें। हमारा ध्येय यह था कि हम मुखियाओं को सार्वजनिक कोष से मिले धन की मदद से कार्यक्रम तैयार करें तथा उन्हें चलायें। लेकिन इसके लिये उन्हें प्रेरित किया जाना था, उन्हें मजबूर नहीं करना था। इसके लिये यह आवश्यक है कि उनसे उन्हीं मुद्दों पर चर्चा की जाये, वही समस्यायें उठाने को प्रेरित किया जाए जिनका उनसे गहरा संबंध है, जिनसे वे प्रभावित होते हैं, जिनमें उनकी दिलचस्पी है और जिसे वे हाथ में लेना भी चाहते हैं।

लेकिन यह अभियान केवल ग्राम मुखियाओं तक ही सीमित नहीं रखना होगा। जब कभी अधिकारियों ने केवल इन्हीं से बातचीत की और ग्रामवासियों की ओर ध्यान नहीं दिया तो परिणाम उत्साहजनक नहीं रहे। सार्वजनिक कोष समितियां मुखियाओं ने गुपचुप बना लीं। ये समितियां सार्वजनिक कोष नहीं बना पायीं। लेकिन अधिकारियों ने जहां कहीं आम ग्रामवासियों से सम्पर्क करके उनसे बातचीत करके उन्हें ये समितियां गठित करने के लिये प्रेरित किया वहां ये समितियां सफल रहीं तथा बाद में सार्वजनिक कोष भी स्थापित कर पायीं।

अधिकारियों ने इससे पहले निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से ग्राम मुखियाओं या फिर ग्रामवासियों से इस सम्बन्ध में सम्पर्क करने का प्रयास किया था। सभी राजनीतिक दलों के निर्वाचित प्रतिनिधियों ने इस विचार का स्वागत किया लेकिन साथ ही यह भी कहा कि इस काम में उनके शामिल होने से इस अभियान को नुकसान पहुंचेगा। उनका कहना था कि हम एक दल के लोग अगर इस बारे में गांवों में लोगों से बातचीत करने जायेंगे तो वहां मौजूद दूसरे दल के लोग यह प्रचार कर देंगे कि हम लोग राजनीतिक उद्देश्य से यह काम कर रहे हैं।

इसलिये अधिकारियों ने यह विचार छोड़ दिया लेकिन निर्वाचित प्रतिनिधि लोगों को इस कार्यक्रम के बारे में निजी तौर पर जानकारी देते रहे।

इस प्रकार इस काम में तसल्ली व सार्थकता के अलावा एक तीसरा पक्ष भी है जिसे हम प्रत्यक्ष विधि या सीधी बातचीत कह सकते हैं। इसका एक उदाहरण हम यहां प्रस्तुत करते हैं।

1981-82 वित्तीय वर्ष समाप्त होने पर हमने देखा कि एक गांव में सरकार द्वारा दिये वार्षिक अनुदान का लगातार दो वर्षों तक इस्तेमाल नहीं हुआ। नियम यह है कि जो गांव पिछले वर्ष में आबंटित धनराशि का 75 प्रतिशत से अधिक खर्च नहीं कर पाता उसे अगला वार्षिक अनुदान न दिया जाये। राज्य के कुल एक हजार गांवों में से यही गांव ऐसा था जो अनुदान राशि का उपयोग नहीं कर पाया था। जिले के उपायुक्त ने सार्वजनिक कोष समिति गठित करने की भरपूर कोशिश की पर उसे सफलता नहीं मिली। इसलिए इस गांव के बारे में तीसरा चरण अर्थात प्रत्यक्ष विधि अपनाने का फैसला किया गया। दो अधिकारियों ने गांव के लोगों की बैठक बुलायी। गांव से बाहर रहने वाले इस गांव के लोगों को भी इस बैठक में शामिल होने का अनुरोध किया गया।

यह बैठक करीब नौ घंटे तक चली। उस गांव में कुल साठ घर हैं। ग्राम पंचायत में आठ सदस्य थे। लोगों को बताया गया कि आबंटित धनराशि का उपयोग न करना उनके हित में नहीं है। फिर अधिकारियों के समझाने पर वे सार्वजनिक कोष बनाने पर राजी हो गये। जब कोष समिति बनाने की बात चली तो काफी देर तक विचार-विमर्श हुआ। इसके बाद यह तय हुआ कि गांव का तीसरे वर्ष का अनुदान जारी कर दिया जाये और पिछले दो वर्षों की धनराशि का भी उपयोग करने दिया जाये।

इसके बाद गांव के दो मुखिया उपायुक्त के पास गये और ग्राम कोष के लिए पांच हजार रुपये की पहली किश्त भेंट की। यह राशि गांव के खाते में बैंक में जमा करा दी गयी। अगले छः महीने तक राशि इतनी ही रही जबकि अन्य गांव जिन्होंने शुरू में पांच सौ, एक हजार या डेढ़ हजार रुपये जमा कराये थे तब तक दस हजार जोड़कर जमा करा चुके थे। एक निचले अधिकारी ने उपायुक्त को रिपोर्ट दी कि इस पांच हजार की राशि के बारे में गांवों के लोगों को कोई जानकारी नहीं है। आगे जांच से पता चला कि गांव के दस प्रमुख लोगों ने पांच-पांच सौ रुपये एकत्र करके ये पांच हजार रुपये जमा कराये थे और ऐसा उन्होंने गांव की प्रतिष्ठा को बचाने के लिये किया था। लेकिन उन्होंने अन्य लोगों को इस बारे में नहीं बताया। लेकिन अब ऐसा करने

का उन्होंने वचन दिया। लेकिन दो माह बाद भी उन्होंने ऐसा नहीं किया।

तब उपायुक्त ने गांव की सभा बुलाने का फैसला किया। इस सभा में स्त्रियों सहित गांव के लगभग सभी तीन सौ लोग एकत्र हुए। इसमें विचार-विमर्श के बाद यह तय हुआ कि उपायुक्त और गांव के प्रमुख लोग आपस में कोष की राशि बढ़ाने के उपायों पर विचार करेंगे। इस विचार-विमर्श के दौरान कोष समिति में परिवर्तन किया गया, नया सचिव नियुक्त किया गया और राशि बढ़ाने का लक्ष्य तय किया गया। (क्रमशः)

**अनुवादः ओम प्रकाश दत्त**

# 10 लाख कुएं बनाने की योजना की शुरूआत

पहली अप्रैल, 1988 से देश भर में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए 10 लाख कुओं की योजना (मिलियन वेल स्कीम) नाम से सिंचाई कुओं के निर्माण की एक योजना शुरू की गई है। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) तथा ग्रामीण श्रम रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) तथा इसके अधीन इन्दिरा आवास योजना कार्यक्रम के अन्तर्गत क्रियान्वित की जाने वाली यह योजना 2 वर्ष तक जारी रहेगी।

वर्ष 1988-89 के दौरान 442.87 करोड़ रुपये की लागत से 3 लाख कुएं खोदने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। यह खेतों की स्थिति जैसी क्षेत्रीय दशाओं तथा भू-जल इत्यादि की उपलब्धता पर निर्भर करेगा।

इस योजना का उद्देश्य गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति से सम्बन्धित छोटे तथा मध्यम दर्जे के किसानों तथा जो गांव के समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) के रजिस्टर में सूचीबद्ध हों, को लागत मुक्त दर पर खुले सिंचाई कुएं उपलब्ध कराना है। लघु सिंचाई के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत पहले से ही सहायता पाने वाले लाभान्वित लोगों को इस कार्यक्रम में शामिल नहीं किया जाएगा।

यह योजना केवल खुले कुओं तक ही सीमित है तथा इसमें बोरिंग वाले कुएं तथा नलकूप शामिल नहीं हैं। केवल उन क्षेत्रों में ही इस योजना को लागू किया जाएगा जहां ट्यूबवैल (नलकूप) द्वारा सिंचाई की अपेक्षाकृत खुले कुएं लागत के हिसाब से अधिक किफायती होते हैं।

परियोजनाओं की स्वीकृति देते हुए नाबार्ड के लागत खर्च नियमों का अनुसरण किया जाएगा। प्रथम चरण में केवल उन्हीं कुओं को हाथ में लिया जाएगा जिनका कमान क्षेत्र एक हैक्टेयर है। ऐसे सामूहिक कुओं को जो एक से अधिक जोत की सिंचाई कर सकते हैं प्राथमिकता दी जाएगी। निजी कुओं को निम्न प्राथमिकता दी जाएगी। नाबार्ड के नियमों के अनुरूप सिद्ध न होने वाली कुआं परियोजनाओं को केवल भारत सरकार की केन्द्रीय मंजूरी समिति ही स्वीकृति देगी।

जहां तक संभव होगा लाभार्थियों को अपने खुद के श्रम के माध्यम से ही कुओं की खुदाई के कार्य को हाथ में लेने को कहा जाएगा। स्थानीय श्रम के लिए उन्हें पैसा मिलेगा। किसी भी दशा में काम को किसी ठेकेदार को नहीं सौंपा जाएगा।

असफल कुओं के बारे में 1000 रुपये तक का अनुदान अथवा वास्तविक लागत, जो भी कम हो दिया जाएगा। बशर्ते असफल कुएं में पानी इतना कम हो कि उसे छोड़ देना पड़े। असफल कुएं के बारे में अनुदान तभी मिलेगा जबकि व्यक्ति विशेष ने कुएं की खुदाई का काम वास्तव में हाथ में लिया हो।

भारत सरकार के कृषि विभाग ने अनाजों के उत्पादन के लिए कार्य योजना शुरू की है जो उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, असम तथा आंध्र प्रदेश में कार्यान्वित की जाएगी। इस कार्य योजना का एक भाग विशेष चुने हुए जिलों में लघु सिंचाई इकाइयों की स्थापना के माध्यम से, सुनिश्चित विकास से सम्बन्धित है।

कोटा जिला राजस्थान

# ग्रामीण विकास को नई दिशा दी बीस सूत्री कार्यक्रम ने

प्रभात कुमार सिंघल

खुशियारा कभी सहराना था। आदिवासी सहरियों के लिये कच्चे घास फूस के झोपड़ों का जीवन। आज टापरियों का अतापता नहीं। पक्के घर बन गये हैं। पीने का पानी कोसों दूर पर सर पर घड़ों में भरकर महिलाएं लाती थीं, अब घरों के पास है। पंप लग गया है। फरेदुआ के सहरिया भी पक्के मकानों में आ गये हैं। अनेक गाँवों में रोटी पकाने के लिये चूल्हा जलाते-जलाते महिलाऐं धुऐं से बेहाल हो जाती थीं। साँस धोकनी की तरह चलने लगती थी। अब निर्धूम चूल्हों ने उनको धुऐं के दुष्परिणामों से मुक्ति दिलाई है। गोबर गैस संयंत्र वरदान सिद्ध हो रहे हैं।

बल्ब तो बिजली से जलता है यह तो सुना था पर सूर्य की शक्ति से भी बल्ब जलेगा यह न सुना था। मुहाल एवं मुडियार की शाहुपरा सहराने आज सौर्य ऊर्जा की बिजली से जगमगाते हैं।

पीने के साफ पानी के लिये नल लगे हैं। बिजली आई, अज्ञानता दूर करने के लिये बच्चे शाला जाने लगे और प्रौढ़ों के लिये शालाऐं गाँव-गाँव में खुलीं। सीमित परिवार का महत्व समझा तो महिलाऐं परिवार के विरोध के बावजूद भी नसबंदी आपरेशन कराने के लिये शिविरों में पहुँचने लगीं। खरंजे बने, शलाल शाला भवन बने, नये पेयजल कुऐं खोदे गये। काम ही काम हुए। निर्माण पक्के और पुख्ता। कहीं खोट नहीं, काम हुए और गाँव का नक्शा ही बदलने लगा और हाथों को रोजगार मिला।

ग्रामीण विकास के ऐसे कामों को गतिशील बनाया, कोटा जिले में बीस सूत्री कार्यक्रम ने। जिला प्रशासन और जनप्रतिनिधियों ने आपसी तालमेल और समन्वय से इस कार्यक्रम में महत्वपूर्ण उपलब्धियां अर्जित हैं। जिला कलेक्टर धर्मवीर ने पूरी मुस्तैदी से इस कार्यक्रम को प्रारंभ से ही क्रियाशील किया ताकि जरूरतमंद लोगों को इसका लाभ शीघ्र मिल सके। प्रगति की समय-समय पर समीक्षा की गई। अनेक कामों का स्वयं उन्होंने एवं अधीनस्थ अधिकारियों ने मौके पर जाकर अवलोकन किया। जनप्रतिनिधियों के प्रभावी सुझावों को समझबूझ से लागू किया गया। प्रयासों का मिलाजुला परिणाम है कि वर्ष 1987-88 में नये बीस सूत्री कार्यक्रम में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की जा सकी।

**गरीबी के खिलाफ संघर्ष**

नये बीस सूत्री कार्यक्रम में पहला सूत्र गरीबी के खिलाफ संघर्ष इस बात का प्रतीक है कि सर्वोच्च प्राथमिकता इस बात को दी गई है कि किस प्रकार आम आदमी का जीवन स्तर ऊपर उठे। इसमें एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम से गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाले 7120 निर्धन परिवारों को कृषि, पशुपालन एवं अकृषि कार्यों पर आर्थिक साधन उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था। लक्ष्यों की तुलना में निर्धारित लक्ष्य से अधिक 8131 निर्धन परिवारों को आर्थिक संसाधन जुटाए गये। कुल लाभांवित परिवारों में से 2559 परिवार अनुसूचित जाति के 1731 परिवार अनुसूचित जनजाति के एवं 3891 परिवार अन्य वर्ग के लाभांवित किये गये।

इनके अलावा 750 निर्धन परिवार ऐसे भी लाभांवित करने का लक्ष्य रखा गया जो एक बार पूर्व में लाभांवित किये गये थे। इसकी तुलना में 752 परिवारों को लाभांवित किया गया। इस प्रकार कुल 7870 परिवारों के लक्ष्य की तुलना में 8883 परिवारों को लाभांवित किया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के अन्तर्गत तीन लाख 60 हजार मानव श्रम दिवस रोजगार उपलब्ध कराना था। जिसकी तुलना में लक्ष्य से दुगना 6 लाख 56 हजार मानव श्रम दिवस रोजगार का सृजन किया गया।

लघु उद्योगों के पंजीकरण में 80 के लक्ष्य की तुलना में 156 का पंजीकरण किया गया।

**सिंचाई जल का बेहतर उपयोग**

सिंचाई क्षमता में वृद्धि के प्रयास इस सूत्र के अन्तर्गत किये गये। मध्यम एवं लघु सिंचाई परियोजनाओं से नहरों द्वारा एक हजार हैक्टेयर में सिंचाई सुविधा विकसित करने का शत प्रतिशत लक्ष्य प्राप्त किया गया। कुओं द्वारा 1500 हैक्टेयर में सिंचाई सुविधा का विकास करना था। जिसकी तुलना में लक्ष्य से अधिक 2098 हैक्टेयर में सिंचाई सुविधा का विकास किया गया। कुओं द्वारा इतने ही हैक्टेयर में सिंचाई क्षमता का उपयोग भी किया गया।

वर्षा पर निर्भर कृषि विकास के तहत 4 वाटर शैड के निर्माण लक्ष्य की तुलना में दुगना लक्ष्य प्राप्त कर 8 वाटर शैड का निर्माण कराया गया।

**उन्नत कृषि अधिक उत्पादन**

अधिक पैदावार के लिये इस कार्यक्रम के तहत प्रयास किये गये। चावल, तिलहन व दलहन की खेती बढ़ाने के विशेष प्रयास किये गये। चावल 3250 हैक्टेयर में बोये गये एवं 6527 टन चावल उत्पादित हुआ।

तिलहन की फसलें खरीफ एवं रबी में क्रमशः 76685 हैक्टेयर एवं 85510 हैक्टेयर में बोई गई तथा खरीफ में 61683 टन का उत्पादन हुआ।

दलहन की फसलें रबी एवं खरीफ में क्रमशः 115587 एवं 24149 हैक्टेयर क्षेत्रफल में बोई गई तथा खरीफ में 13100 मीट्रिक टन उत्पादन हुआ।

**सभी के लिये स्वास्थ्य**

इस सूत्र के अन्तर्गत गर्भवती एवं नवजात शिशुओं के बीमारियों से रोकथाम के लिये निरोधक टीके लगवाने के लिये विशेष अभियान चलाकर प्रयास किये गये। स्वयं सेवी संस्थाओं का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा।

बच्चों को डी.पी.टी. के 51088, पोलियों के 47962 एवं बी.सी.जी. के 52126 एवं माताओं को 69348 टीके लगाये गये।

ग्रामीण शौचालयों के निर्माण कार्य भी कराये गये। विभिन्न कार्यक्रमों के तहत 227 शौचालय बनाये गये।

**दो बच्चों का परिवार**

सीमित परिवार का महत्व अब समझाने की आवश्यकता नहीं परंतु फिर भी लोगों में परिवार कल्याण अपनाने की पहल करने की प्रवृत्ति का अभाव है। अथक प्रयासों के फलस्वरूप 6 हजार 398 नसबंदी आपरेशन सम्पन्न किये गये। कापर टी 6731 लगाये गये। अस्थाई साधनों में ही करीब पौने नौ लाख निरोध एवं दो लाख गर्भ निरोधक गोलियों का वितरण किया गया। पोषाहार कार्यक्रम के तहत 455 आंगनवाड़ी केन्द्र संचालित किये गये जिनसे 10 हजार से अधिक बच्चों व गर्भवती माताओं को लाभांवित किया गया।

**शिक्षित राष्ट्र**

इस सूत्र के तहत बच्चों को शाला भवन लाने के प्रयास किये गये। 6 से 11 वर्ष एवं 11 से 14 वर्ष की आयु के क्रमशः 926 एवं 1126 बच्चों का नामांकन किया गया।

प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत 420 केन्द्रों से 12,800 प्रौढ़ों को साक्षर करने की तुलना में 429 केन्द्र खोले गये एवं 13 हजार 65 प्रौढ़ों को साक्षर किया गया। इनमें अनुसूचित जनजाति के 3797 एवं अनुसूचित जनजाति के 3242 एवं 4822 महिलाऐं शामिल हैं।

**अनुसूचित जनजातियों का न्याय**

नहर क्षेत्र में भूमि आबंटन, कृषि उत्पादन हेतु सहायता, कुओं का विद्युतीकरण, खादी व ग्रामोद्योग इकाई, औद्योगिक ऋण व सहायता, कुओं को गहरा करना, रोजगार हेतु प्रशिक्षण एवं डी.आर.डी.ए. से आर्थिक सहायता आदि कार्यक्रमों से अनुसूचित जाति के 6862 परिवारों एवं जनजाति के 4402 कुल 11 हजार 264 परिवारों को सहायता उपलब्ध कराकर लाभांवित किया।

**सबके लिये मकान**

ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन परिवारों को आवासीय सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयास इस सूत्र के तहत किये गये। निःशुल्क भूखंड 1700 आबंटित करने की तुलना में 2123 भूखण्ड आबंटित किये गये। अनुदान योजना में 1116 आवासीय मकान बनाये गये। राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना से 861 एवं इन्दिरा आवासीय योजना से 554 मकान

बनाये गये। सभी मकान अनुसूचित जाति तथा जनजाति के परिवारों के लिये बनाए गये। कुल मकानों में 497 मकान निर्माणाधीन हैं।

**वन विस्तार योजना**

इस सूत्र के अन्तर्गत 61 लाख वृक्ष लगाने के लक्ष्य की तुलना में 65 लाख वृक्ष रोपित किये गये।

**गाँवों को ऊर्जा**

इस सूत्र में 68 गाँवों एवं 451 कुओं का विद्युतीकरण किया गया। निर्धूम चूल्हे 2400 लगाने के तुलना में 6870 तथा 100 बायोगैस लगाकर शत प्रतिशत उपलब्धियाँ प्राप्त की है।

तंग बस्तियों में सुधार में कुल 3800 परिवार लाभांवित किये गये। उपभोक्ता कल्याण के तहत तीन दुकानें खोली गईं। पीने का साफ पानी 100 गाँवों को सुलभ कराने के लक्ष्य की तुलना में 199 में उपलब्ध कराया गया। भूमि सुधार के तहत 225 एकड़ सरप्लस भूमि का आबंटन कर 229 व्यक्तियों को लाभांवित किया गया।

महिलाओं को समानता, युवा वर्ग को नये अवसर तथा संवेदनशील प्रशासन के कोई लक्ष्य नहीं रखे गये थे। फिर भी इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। जिले में भी अकाल की काली छाया है। अकाल का मुकाबला मुस्तैदी से करते हुये बीस सूत्री कार्यक्रम पर जिला प्रशासन ने पूरा ध्यान केन्द्रित रखा और इसी का सुफल लक्ष्य से अधिक उपलब्धियों के रूप में सामने आया। इसमें कोई अतिश्योक्ति नहीं कि पंचायत समिति स्तर पर विकास अधिकारियों एवं प्रधानों के साथ-साथ सरपंचों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

**सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी**
**सूचना केन्द्र, कोटा-324001**

# देखो और सीखो

**डि.सि. केशवराव**

पेड़ को देखो !
और उसके जैसे
परोपकार करना सीखो !
बादल को देखो !
और उसके जैसे
प्राणियों की सेवा करना सीखो।
मोमबत्ती को देखो !
और उसके जैसे दूसरों के लिए
बलिदान देना सीखो।
उँचे पहाड़ को देखो !
और उसके जैसे उन्नत होना सीखो !
देशभक्त को देखो. !
उसके जैसे
मातृभूमि की हमेशा
सत्सेवा करना सीखो !

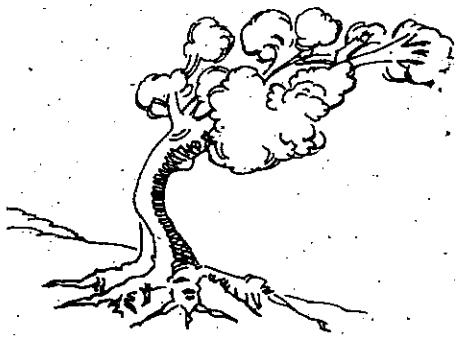

**कृष्णालंका**
**सॉ मिल रोड**
**म.न.–41-27-19**
**विजयवाड़ा-13 (आन्ध्र प्रदेश)**

# ग्रामीण अंचलों में शुद्ध पेयजल की समस्या

डॉ. विनोद गुप्ता

यदि पृथ्वी पर पानी नहीं होता तो जीवन की उत्पत्ति असंभव थी। मानव जीवन में पानी के कई उपयोग हैं, लेकिन पानी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपयोग पीने के लिए है। अन्न के बिना मनुष्य दो चार हफ्ते जी सकता है, लेकिन पानी के बिना दो चार दिन जीना भी दूभर हो जाता है। वही पानी जो जीवन का संबल है; यदि प्रदूषित हो तो त्रासद बन जाता है। अतः घरेलू जरूरतों के लिए जो पानी हम इस्तेमाल करें वह शुद्ध एवं स्वच्छ होना चाहिए।

स्वतंत्रता प्राप्ति के चालीस वर्ष पश्चात भी हम देश के सभी गांवों को पेयजल मुहैया नहीं करा सके हैं और हजारों ऐसे गांव हैं, जहां पेयजल का एक भी स्रोत नहीं है। पचास प्रतिशत से अधिक गांवों में पेयजल की उपलब्धि काफी मर्यादित है, अर्थात एक ही स्रोत है।

पीने के लिए जल शुद्ध होना चाहिए। शुद्ध जल रंगहीन, गंधहीन और सभी प्रकार के रोगों के कीटाणुओं एवं रासायनिक मिश्रणों से मुक्त होना चाहिए लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हमारे गांवों में ऐसा जल सहज उपलब्ध नहीं है। अपने देश में सामान्यतः नदी-नालों, झरनों, तालाबों,नहरों, कुओं आदि से पीने का पानी प्राप्त किया जाता है।

गांवों में पानी का मुख्य स्रोत तालाब और कुएं ही हैं। अकसर देखा गया है कि गांवों में जिन तालाबों में मवेशी बैठते हैं और मलमूत्र करते हैं, उन्हीं में मनुष्य भी नहाते हैं और उसी पानी को पीने के लिए भी उपयोग में लेने को मजबूर हैं। यानी तालाबों के प्रदूषित जल का सेवन किया जाता है। इसी प्रकार छिछले कुओं का पानी भी बड़ी आसानी से दूषित हो जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली बीमारियों का एक बड़ा हिस्सा पानी से फैलने वाली बीमारियों का है। इन बीमारियों में अतिसार, पेचिस, हैजा, टाइफाइड, पीलिया आदि शामिल हैं। दूषित जल से उपजी ये बीमारियां मौत का कारण भी बन सकती हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कुएं से निकाले जाने वाले पानी को शुद्ध करने के लिए फिटकरी या पोटेशियम पेरमैगनेट के गाढ़े घोल का प्रयोग लाभकारी हो सकता है। घरों में उपयोग किए जाने वाले पानी को उबाल कर, छान कर पीना चाहिए। बीमारियों के वक्त तो ऐसा करना बहुत आवश्यक हो जाता है।

प्रदूषित पानी को कुएं में प्रवेश करने से रोकने के लिए कुएं के पास की जमीन का ढलान, कुएं की मुंह की विपरीत दिशा में होना चाहिए। कुएं के आसपास के भाग को साफ रखना चाहिए। कुएं को पर्याप्त गहराई तक खोदना चाहिए ताकि ऊपर जमीन से रिसता मैला पानी उसमें न आ सके। इस रिसाव को रोकने के लिए कुएं के भीतरी भाग को ईंट की सतह दे देनी चाहिए। कुएं के मुंह के चारों ओर ईंटें की दीवार बना देनी चाहिए ताकि कुएं के आसपास से धुलाई का पानी कुएं में न गिर सके। यदि कुएं के मुंह को ढका जा सके तो उत्तम रहेगा। इससे धूल और कचरा कुएं में नहीं गिर सकेगा।

जहां तक संभव हो कुएं से पानी रस्सी और बाल्टी की बजाय पंप द्वारा ही निकाला जाना चाहिए। जहां यह न हो सके, इस कार्य के लिए एक बाल्टी निश्चित कर देनी चाहिए। समय-समय पर कुएं की सफाई करते रहना चाहिए। कुएं के आसपास नहाना, कपड़े धोना आदि कार्यों को नहीं होने देना चाहिए। कुएं में समय-समय पर रोगाणु नाशक दवाइयां डालनी चाहिए ताकि उसके पानी में रोगाणु न पनप सकें।

घरों में जिन मटकों में पीने का पानी भरा जाता हो, उनकी सफाई नियमित तौर पर होनी चाहिए तथा सदैव पानी छानकर भरना चाहिए। यदि आप कुछ दिनों के लिए घर बंद करके बाहर गए हैं तो आने पर रखे हुए उस पानी का उपयोग न करें जो आपके जाने के समय का भरा हुआ है क्योंकि यह पानी प्रदूषित हो जाता है।

**दीपक निवास**
**156, महात्मा गांधी मार्ग**
**बड़वानी 451551 (म.प्र.)**

# जयपुर जिले में कृषि श्रमिकों की सामाजिक तथा आर्थिक दशा

डॉ. आर.एम. यादव

फार्म की श्रम शक्ति में किसान का श्रम, किसान के परिवार का श्रम एवं श्रमिकों का श्रम सम्मिलित रहता है। जयपुर जिले में कृषि श्रमिकों की संख्या ही अधिक नहीं है बल्कि इनकी गरीबी भी बहुत अधिक है। इनकी स्थिति बहुत कमजोर, गिरी हुई एवं दयनीय है और इन्हें विभिन्न क्षेत्रों में तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अतः कृषि श्रमिकों की समस्याओं को सुलझाये बिना कृषि अर्थव्यवस्था में सुधार लाना असम्भव है।

जयपुर जिले में कृषि श्रमिक एक स्थान पर न होकर विभिन्न स्थानों पर बिखरे हुए हैं। इनको मजदूरी का भुगतान मुद्रा एवं वस्तु दोनों ही प्रकार से किया जाता है। ये भ्रमणशील एवं अदक्ष श्रेणी के होते हैं। इनको मिलने वाली मजदूरी की दरें कम होती हैं तथा रोजगार भी स्थायी नहीं होता। ये अनेक प्रकार के हैं, जिनमें खेती पर काम करने वाले श्रमिक, अदक्ष एवं साधारण श्रमिक, कुशल श्रमिक, स्थायी व अस्थायी श्रमिक प्रमुख हैं।

जिले में कृषि श्रमिकों की संख्या में निरंतर हो रही वृद्धि के लिये कई कारण जिम्मेदार हैं, जिनमें ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या में वृद्धि, भूमि का उपविभाजन व उप खण्डन, गांवों में उद्योगों का विकास नहीं, किसानों की ऋणग्रस्तता, बेरोजगारी की मजबूरी में कृषि कार्य, कृषि में अनिश्चितता की स्थिति इत्यादि प्रमुख हैं।

जयपुर जिले में वर्तमान में कृषि कार्य में लगे श्रमिकों की कुल संख्या 45,681 हैं, जिसमें से 31,291 पुरुष श्रमिक व 14,390 स्त्री श्रमिक विभिन्न ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों में कृषि कार्य में लगे हुए हैं।

**तालिका**

**जयपुर जिले में कृषि श्रमिकों की औसत मजदूरी दरें**

**मजदूरी (रुपये में प्रतिदिन)**

| क्र.सं. | तहसील का नाम | पुरुष | स्त्री |
|---|---|---|---|
| 1. | जयपुर | 20 | 15 |
| 2. | बस्ती | 17 | 12 |
| 3. | चाकसू | 18 | 11 |
| 4. | सांगानेर | 20 | 15 |
| 5. | आमेर | 20 | 15 |
| 6. | जमवारामगढ़ | 20 | 15 |
| 7. | फुलेरा | 18 | 11 |
| 8. | दूदू | 18 | 12 |
| 9. | फागी | 18 | 12 |
| 10. | दौसा | 18 | 12 |
| 11. | बसवा | 18 | 13 |
| 12. | लालसोट | 16 | 12 |
| 13. | सिकराय | 16 | 12 |
| 14. | कोटपूतली | 18 | 13 |
| 15. | विराटनगर | 20 | 15 |
| 16. | चौमू | 20 | 15 |

स्रोत - व्यक्तिगत सर्वेक्षण

जयपुर जिले के कृषि श्रमिक अत्यन्त ही हीन-दीन दशा में हैं। वे सदा ऋण ग्रस्त रहते हैं और इनके रहन-सहन का स्तर निम्न श्रेणी का है। इस दयनीय दशा के निम्नलिखित कारण हैं:—

**1. मजदूरी की दरें**— उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिले की विभिन्न तहसीलों में श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी की दरें औद्योगिक श्रमिकों की तुलना में अत्यन्त ही कम हैं। इससे श्रमिकों के जीवन स्तर और कार्यक्षमता में भी कमी आ गयी है।

**2. न्यूनतम मजदूरी**— न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अनुसार प्रत्येक राज्य कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी

निश्चित करने के लिए स्वतंत्र है। अत्यन्त कम मजदूरी वाले क्षेत्रों के श्रमिकों के लिये यह अधिनियम बहुत ही कल्याण प्रद है, किन्तु जयपुर जिले की विभिन्न तहसीलों में श्रमिकों की बहुलता, निरक्षरता तथा उनमें संगठन के अभाव, ग्रामीण समाज की रुढ़िवादिता तथा उनके परम्परागत संस्कार और रीति-रिवाज इत्यादि कारण इस अधिनियम के लागू होने में बाधक हैं।

**3. मजदूरी के भुगतानों की विधियां–** प्राय: मजदूरी भुगतान की तीन विधियां हैं- (अ) समय के आधार पर (ब) कार्य अंश के आधार पर (स) हिस्से वाली रीति। जयपुर जिले में मजदूरी भुगतान हेतु तीनों ही विधियां काम में ली जाती हैं। मजदूरी का भुगतान घंटे, दिन, सप्ताह, माह तथा वर्ष के आधार पर किया जाता है। मजदूरी कार्य के एक अंश के लिये भी दी जाती है। यह विधि बड़े फार्मों के लिये उपयोगी है। हिस्से वाली रीति मुख्य रूप से चौमू, दौसा, फुलेरा, सिकराय, लालसोट, कोटपूतली, विराटनगर, जमवारामगढ़, फागी, दूदू, इत्यादि तहसीलों में प्रचलित है। चौमू तहसील में चमार जाति के लोग जो हल जोतने, बीज बोने, फसल काटने इत्यादि कार्यों में सहायता करते हैं वे मजदूरी के बदले "जौ" की फसल का 1/3 तथा गेहूं की फसल का 1/6 वां भाग पाते हैं।

विराटनगर और आमेर तहसील में कपास चुनने वाले चुनी हुई कपास का 1/3 भाग पाते हैं। अब अनाज का भाव ऊंचा होने के कारण नकद रुपये में मजदूरी देने की रीति अधिकांश रूप में अपनायी जाने लगी है।

**4. कार्य के घण्टे–** जयपुर जिले में औद्योगिक श्रमिकों की भांति कृषि श्रमिकों के कार्य का निर्धारण नहीं है। औद्योगिक श्रमिक 8 घण्टे काम करता है और इससे अधिक घण्टे कार्य करने पर उसे अतिरिक्त पारिश्रमिक मिलता है, किन्तु कृषि श्रमिकों के कार्य करने का समय-स्थान, ऋतु तथा फसल के अनुसार भिन्न-भिन्न होता है और उन्हें लम्बे समय तक कार्य करने का पारिश्रमिक भी नहीं मिलता। बुवाई, सिंचाई, कटाई आदि कार्यों के समय सूर्योदय के पहले से लेकर रात्रि के 8-9 बजे तक उन्हें कार्य करना पड़ता है। केवल दोपहर के भोजन के समय 1-2 घंटे का अवकाश प्राप्त होता है। दोपहर के अवकाश के समय खाना, पानी, बीड़ी, तम्बाकू इत्यादि फार्म-मालिक द्वारा ही दिया जाता है। पकी हुई फसल तथा खलिहान की चौकीदारी के समय तो उसे पूरे 24 घंटे काम पर जुटा रहना पड़ता है। इससे कृषि श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है

**5. आवास या गृह व्यवस्था–** जयपुर जिले में फार्म मालिकों द्वारा कृषि श्रमिकों को किसी भी प्रकार की आवास सुविधाएं उपलब्ध नहीं करवायी जाती हैं। धन के अभाव के कारण कृषि श्रमिकों की आवास सम्बंधी व्यवस्था उत्तम प्रकार की नहीं होती। परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुपात से घरों में रहने की जगह कम होती है। कभी एक ही कोठरी में पुरुष, स्त्री, बच्चे, बूढ़े, रोगी तथा पशु-पक्षी सभी निवास करते हैं। घरों के आस-पास गन्दगी रहने से अनेक रोगों का प्रकोप होता है एवं शुद्ध वायु तथा धूप का अभाव रहता है। फलत: श्रमिकों का स्वास्थ्य गिर जाता है और वे अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं।

**6. कृषि श्रमिकों की मौसमी बेकारी–** जयपुर जिले के कृषि मजदूरों से वार्तालाप करने पर ज्ञात हुआ कि वे वर्ष में 5-6 महीने तक बीमार रहते हैं। आमेर तहसील के श्रमिकों का कहना है कि उन्हें वर्ष में केवल 200 दिन ही काम मिलता है। विराटनगर तहसील के श्रमिकों का कहना है उन्हें वर्ष भर में 195 दिन काम मिलता है। चौमू तहसील के कृषि श्रमिकों का कहना है कि एक वर्ष में पुरुष श्रमिक को 240 दिन तथा स्त्री-श्रमिकों को 160 दिन रोजगार प्राप्त होता है। सम्पूर्ण जिले के बारे में अनुमान है कि 16 प्रतिशत व्यक्तियों को पूरे वर्ष भर कार्य नहीं मिलता।

**7. कृषि श्रमिकों की ऋणग्रस्तता–** कृषि श्रमिकों की आय इतनी नहीं होती कि वे अपने तथा अपने परिवार के भरण-पोषण के अतिरिक्त अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। अत: उन्हें ऋण का सहारा लेना पड़ता है। एक बार ऋणग्रस्त हो जाने पर उन्हें इससे मुक्ति मिलना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप इन्हें साहूकारों या पूंजीपतियों के यहां दास (सेवक) के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

**8. कार्य करने की परिस्थितियों का अनुकूल न होना–** कृषि श्रमिकों को वर्षा, तेज धूप एवं भयंकर सर्दी में भी फार्म पर खुले में कार्य करना पड़ता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में कार्य करने पर भी श्रमिकों को अतिरिक्त मजदूरी का भुगतान नहीं किया जाता है।

**व्यावसायिक प्रशासन विभाग,**
**सेठ मोतीलाल (पी.जी.) महाविद्यालय**
**झुन्झुनु (राजस्थान)**

पेयजल मानव की पहली जरूरतों में से एक है। समस्त ग्रामीण जन-संख्या को स्वच्छ पेयजल की व्यवस्था करना सरकार का प्राथमिक ध्येय है।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी.एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ.. नई दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55
दिल्ली डाक

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi
, Delhi Postal

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित